(आचार्य कुन्दकुन्द चरित्र)

# जैनधर्म की कहानियाँ

## भाग - २९

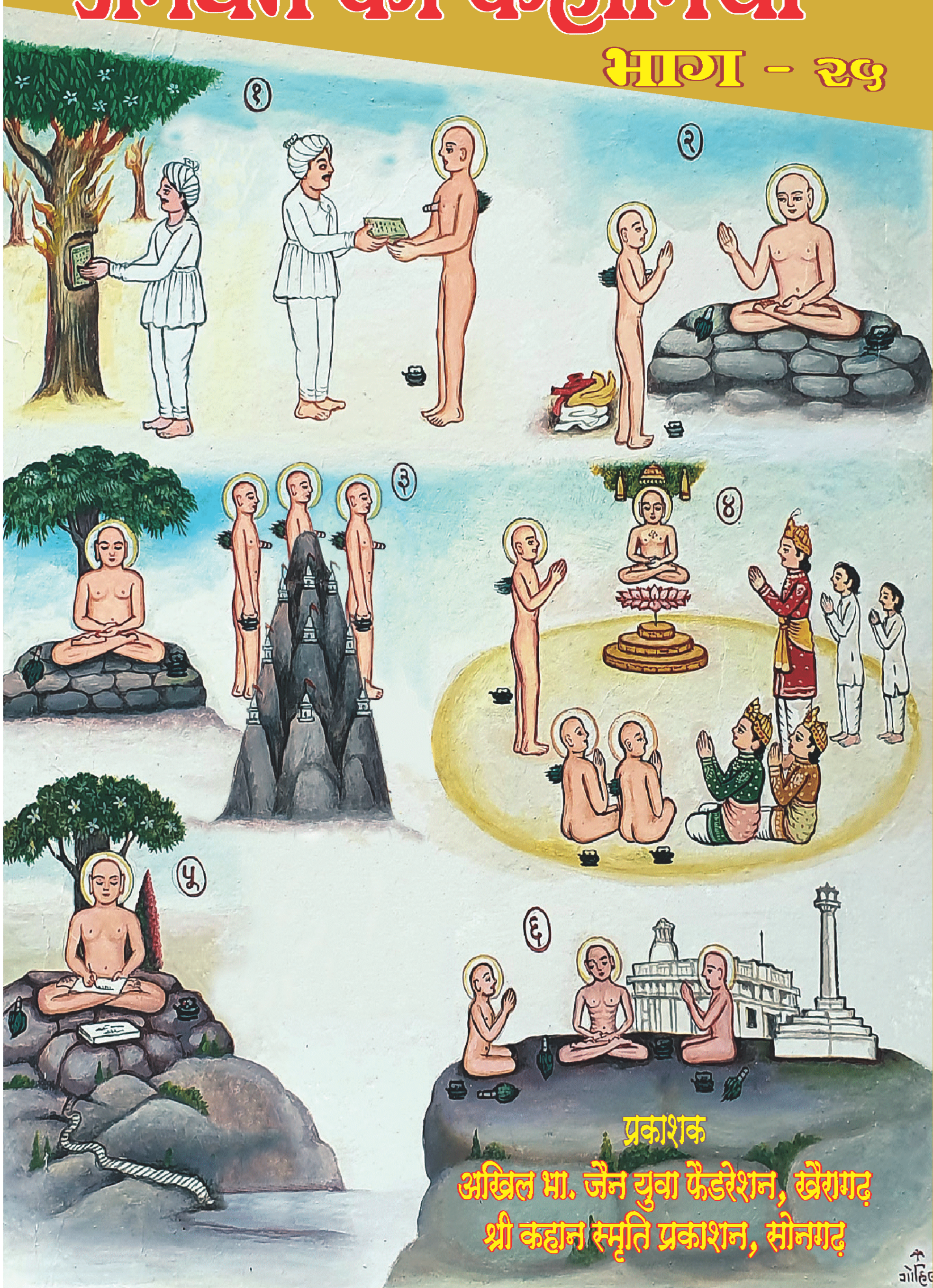

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

**जन्म :** सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
**पिता :** श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

**शिक्षा/व्यवसाय :** प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
**सत्-समागम :** सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

**ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा :** सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

**विशेष :** भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

**हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले**

**पुत्र :** दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

**पुत्रियाँ :** ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ३३ पुष्प

# जैनधर्म की कहानियाँ

## आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

## (भाग - २५)

लेखक :

**श्री एम. बी. पाटील, शेडवाल**

हिन्दी अनुवाद :

**ब्र. यशपाल जैन जयपुर एवं पण्डित भरतेश पाटील, बेलगाम**

सम्पादक :

**पण्डित रमेशचन्द शास्त्री, जयपुर**

प्रकाशक :

**अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन,** खैरागढ़ – ४९१ ८८१

मो. ९४२४१११४८८

और

**श्री कहान स्मृति प्रकाशन,** कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. ८६१९९७५९६५

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ कुल : २१०० प्रतियाँ
**दशलक्षण पर्व, (सितम्बर, २०२४)**

न्यौछावर : 15 रुपये मात्र

# हुए न हैं न होहिंगे मुनिन्द कुन्कुन्द से

**जास के मुखारविन्द तैं प्रकाश भास वृन्द[१]**
**स्यादवाद जैन वैन इन्दु[२] कुन्दकुन्द से।**
**तास के अभ्यास तैं विकास भेदज्ञान होत**
**मूढ़ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्द से[३]।।**
**देत हैं अशीष[४] शीष-नाय इन्द्र चन्द्र जाहि**
**मोह मार खण्ड मार्तण्ड[५] कुन्दकुन्द से।**
**विशुद्ध बुद्धि वृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा**
**हुए न हैं न होहिंगे मुनिन्द कुन्दकुन्द से।।**

१. दिव्यध्वनि का प्रकाशित हाना। २. चन्द्रमा
३. कुबुद्धिजन श्री कुन्दकुन्द आचार्य को नहीं जानते/समझते।
४. श्री कुन्दकुन्द आचार्य आशीष देते हैं।
५. मोह और काम रूपी अंधकार को सूर्य के समान हैं।

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,** ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-४२२ ४०१
३. **तीर्थधाम मंगलायतन,** पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)
४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)
५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

# प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

इसमें कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वांगीण जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। इस कृति का शोध-खोज पूर्ण लेखनकार्य मूल कन्नड भाषा में श्री एम. बी. पाटील, शेडवाल ने किया है। लगभग ३० वर्ष पूर्व १९९० में इसका हिन्दी में प्रकाशन हुआ, जो ब्र. यशपाल जैन जयपुर एवं पण्डित भरतेश पाटील, बेलगाम द्वारा किया गया। श्री प्रेमभाई खैरागढ़ की प्रेरणा से पण्डित रमेशचन्द शास्त्री, जयपुर ने अनेक बार पढ़कर पुन: सम्पादित करके सरल सुबोध भाषा में सर्वसामान्य के योग्य प्रकाशित किया है। अत: हम सभी के आभारी हैं।

सभी वर्ग के लोगों द्वारा इनका लाभ लिये जाने से इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

**विनीत:**

मोतीलाल जैन
**अध्यक्ष**

पं. अभय जैन शास्त्री
**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

**पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।**

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

इसमें कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्द के सर्वांगीण जीवन चरित्र का वर्णन किया गया है। इस कृति का शोध-खोज पूर्ण लेखनकार्य मूल कन्नड भाषा में श्री एम. बी. पाटील, शेडवाल ने किया है। लगभग ३० वर्ष पूर्व १९९० में इसका हिन्दी में प्रकाशन हुआ, जो ब्र. यशपाल जैन जयपुर एवं पण्डित भरतेश पाटील, बेलगाम द्वारा किया गया। श्री प्रेमभाई खैरागढ़ की प्रेरणा से पण्डित रमेशचन्द शास्त्री, जयपुर ने अनेक बार पढ़कर पुन: सम्पादित करके सरल सुबोध भाषा में सर्वसामान्य के योग्य प्रकाशित किया है। अत: हम सभी के आभारी हैं।

सभी वर्ग के लोगों द्वारा इनका लाभ लिये जाने से इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है। आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे। साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

**विनीत:**

मोतीलाल जैन
**अध्यक्ष**

पं. अभय जैन शास्त्री
**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

**पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।**

## विनम्र आदराञ्जली

**जन्म**
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

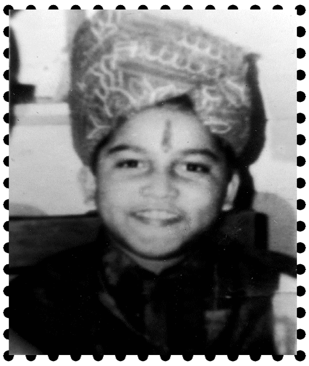

**स्वर्गवास**
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

**स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया**

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे - ऐसी भावना है।

**हम हैं**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **दादा** | स्व. श्री कंवरलाल जैन | **दादी** | स्व. मथुराबाई जैन |
| **पिता** | श्री मोतीलाल जैन | **माता** | श्रीमती शोभादेवी जैन |
| **बुआ** | श्रीमती ढेलाबाई | **फूफा** | स्व. तेजमाल जैन |
| **जीजा** | श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन | **जीजी** | सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा |
| **जीजा** | श्री योगेशकुमार जैन | **जीजी** | सौ. क्षमा जैन, धमतरी |

# ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

### परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

### शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

### परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता–अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

### संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका

### परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता

स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

## साहित्य प्रकाशन फण्ड

1001/- श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
1001/- श्रुति मनीश शाह, बडोदरा
501/- जयाबेन मणीकलाल कामदार, जैतपुर
501/- मीना निरंजन शाह कांदिवली
501/- श्रीमती वरखादेवी मनोजकुमार जैन टाटिया, खैरागढ़
501/- श्रीमती स्वर्णा प्रदीपकुमार जैन, खैरागढ़
501/- प्रीतिबेन महेन्द्र भाई शाह, हैदराबाद
501/- अस्मिता बेन विपुलभाई, राजकोट
501/- अंजना बेन राजकुमार जैन अहमदाबाद
501/- श्रीमती समता अमितकुमार जैन, कानपुर
501/- ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़
501/- स्व. श्रीमती कंचनबाई ह. श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़
501/- श्रीमती ऑचल-निश्चल जैन, ह. सरला जैन, खैरागढ़
501/- श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़, ह. ब्र. जमनाबेन खैरागढ़
501/- श्रीमती पूजा सिद्धेश संघवी, राजकोट
501/- ढ़ेलाबाई चैरीटेबल ट्रस्ट ह. श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़
501/- श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट , खैरागढ़
201/- चि. मर्मज्ञ जैन ह. श्रीमती पूजा साकेत शास्त्री जयपुर

### ज्ञान

**ज्ञान बाहर से आता हुआ दिखता है,**
**जबकि ज्ञान सदा बना रहता है।**

### राग

**राग अन्दर से आता हुआ दिखता है,**
**जबकि राग आता-जाता रहता है।**

– आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी

कलिकालसर्वज्ञ अध्यात्मप्रणेता

# आचार्य
# कुन्दकुन्ददेव

**मंगलं भगवान वीरो मंगल गौतमो गणी।**
**मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।**

भारतीय संस्कृति मूलतः आध्यात्मिक संस्कृति है। इस संस्कृति का सार और अन्तःप्राण आत्मदर्शन ही है। अनादिकाल से प्रौढ़, दूरदर्शी और विवेकी पुरुषों का प्रयत्न इसी अन्तःप्राण की प्राप्ति के लिए अनवरतरूप से चला आ रहा है। वे बाह्य प्राणों की कीमत पर भी इस अन्तःप्राणरूप शुद्धता को प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं। विशेष प्रयत्न से प्राप्त इस आत्मानंद के सामने विश्व का कोई भी भौतिक आनन्द उन्हें आकर्षक नहीं लगता।

इस तरह की आध्यात्मिक स्वाधीनता और आत्मा के अखण्ड ऐश्वर्य की पूर्ण प्राप्ति जिस महापुरुष को हुई है, वही वस्तुतः स्वतंत्र पुरुष है, अजेय है, अक्षय है, पूर्ण सुखी है, परमात्मा है और सिद्ध भगवान है। यही सिद्धावस्था आध्यात्मिक जीवन का अन्तिम साध्य है, सर्वोच्च स्थान है। यहाँ ही आत्म-विकास पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। यह सिद्धावस्था ही कृतकृत्यावस्था है, जहाँ कुछ करना शेष नहीं रहता। जो मुमुक्षु सिद्धत्व को प्राप्त करने के लिए निरन्तर उत्कृष्ट साधना करते हैं, वे ही साधु कहलाते हैं।

इस वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थकाल में भगवान ऋषभनाथ

से लेकर भगवान महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर, अनेक केवली, गणधर, ऋषि, मुनि आदि हुए हैं। भगवान महावीर के बाद तीन केवली और पाँच श्रुतकेवली हुए। उनमें अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय उत्तर भारत में बारह वर्ष का भीषण अकाल पड़ा, तब श्री भद्रबाहु स्वामी अपने शिष्यों के साथ दक्षिण भारत पहुँचे।

उस समय दक्षिण भारत में जैन परम्परा का उज्ज्वल प्रकाश हुआ। और भगवान महावीर की दिव्य वाणी को लिपिबद्ध करने का श्रेय दक्षिण भारत के आचार्य परमेष्ठियों को प्राप्त हुआ; जिससे इस पंचमकाल के अंत पर्यंत धर्मप्रवर्तकों का दक्षिण भारत में होना और धर्म का दक्षिण भारत में जीवित रहना तो नैसर्गिक वरदान ही मानना पड़ेगा।

भगवान महावीर के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद अर्थात् विक्रम संवत् के प्रारंभ में उत्तर–दक्षिण भारत के समन्वयरूप अध्यात्मलोक मुकुटमणि, आचार्य कुलतिलक स्वरूप महापुरुष आचार्य कुन्दकुन्द का उदय हुआ। उन्होंने मानों प्रत्यक्ष केवली सदृश कार्य करके चार मंगलों में सहज रीति से स्थान पा लिया।

इतना ही नहीं भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद प्रथम स्थान पर विराजमान होकर शोभायमान हुए। ऐसे अलौकिक महापुरुष के दिव्य चरित्र का हमें अध्ययन अवश्य करना चाहिए एवं उनकी सुखदायक साधना से परिचित होकर उसे अपने जीवन में यथाशक्ति प्रगट करने का मंगलमय कार्य करना चाहिए।

अतः आइए, प्रथम इनके जीवन के संबंध में अद्यावधि पर्यंत शोध–बोध से प्राप्त विषयों का ऐतिहासिक तथा तात्विक दृष्टिकोण से अवलोकन करें।

**पूर्वभव –**

एक ओर घना जंगल और उसमें ही शिखर–समान शोभायमान उत्तंग पर्वत, उन पर्वतों को पराभूत करके अपनी उन्नति को दर्शानेवाले गगनचुम्बी वृक्ष, दूसरी ओर समतल प्रदेशों में उगी हुई हरी–भरी घास का मैदान तथा इन दोनों के मध्य में मन्द–मन्द प्रवाहमान स्वच्छ जल की निर्झरणी, ये सब एकत्र होकर निसर्ग सौन्दर्य के अत्यधिक वैभव को दर्शा रहे थे। यह स्थान नगर के कृत्रिम जीवन से श्रान्त जीवों को स्वाभाविक, सुख–शान्तिदायक था। इस शांत तथा निर्जन स्थान में यदा–कदा संसार, शरीर और भोगों से विरक्त अनेक साधुवर आकर उन पर्वतों की गुफाओं में बैठकर आत्मा की आराधना करते थे, अनुपम आत्मानंद भोगते थे।

एक बार की बात है, लगभग पंद्रह वर्ष का कौण्डेश नामक एक ग्वाला था। यह एक भोला–भाला, सरलस्वभावी नवयुवक अपने स्वामी की गायों को लेकर उसी घास के मैदान में चरने के लिए छोड़ता था। और स्वयं उस निर्मल व मनमोहक निर्झरणी के पास विशाल शिलाखण्ड पर बैठकर प्रकृति के सौन्दर्य का रसपान किया करता था।

एक दिन कितने ही सुसंस्कृत नागरिकों को उस जंगल में आते हुए देखकर कौण्डेश को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा – ''मैं चार–पाँच वर्षों से यहाँ रोज आ रहा हूँ, पर ऐसे व इतने लोग कभी इस जंगल में आये नहीं–आज ये लोग क्यों आ रहे हैं ?'' इसप्रकार कौतूहल से वन प्रदेश में पैदल रास्ते से जाते हुए उन लोगों को देखता हुआ खड़ा रहा। न जाने क्या सोचकर चरती हुई गायों को छोड़कर वह नवयुवक उन नागरिकों के पीछे चल पड़ा।

उस प्रौढ़ बालक के मन में चलते समय अनेकानेक विचार उत्पन्न हो रहे थे–''कोमल कायावाले ये धनवान लोग कांटों–पत्थरों से भरी हुई भूमि पर नंगे पांव चलते हुए और गर्मी के कारण चलनेवाली लू की भी चिंता न करते हुए जा रहे हैं, अतः यहाँ कोई न कोई महत्वपूर्ण पवित्र स्थान अवश्य होना चाहिए। अन्यथा ये बड़े और सुखी लोग यहाँ क्यों आते?'' इसप्रकार विचार करता हुआ कौण्डेश आगे बढ़ रहा था।

इतने में ही सामने एक उच्च शिलाखण्ड पर एक दिगम्बर महामुनीश्वर दिखाई दिये; उनके पास पहले से ही कुछ लोग बैठे थे, ये लोग भी वहीं जाकर बैठ गये। सभी लोग अपने सर्वांग को मानो कान ही बनाकर अत्यंत एकाग्र चित्त से साधु महाराज का उपदेश सुन रहे थे। और उपदेशदाता की वीतरागी शान्त गम्भीर मुखमुद्रा को देखकर अति आनंदित हो रहे थे। अपने कान तथा आँखों को सफल समझ रहे थे।

प्रातःकाल से सन्ध्यापर्यंत गायों के साथ ही एकमेक होकर प्रकृति की गोद में अपना जीवन व्यतीत करनेवाले उस नवयुवक को उन लोगों की रीति–रिवाज का पता नहीं था। इस कारण कौण्डेश भी आश्चर्यचकित होकर वहीं एक वृक्ष की ओट में खड़े होकर उन महामुनिराज के अमूल्य वचनों को एकाग्रचित्त से सुनने लगा।

यथार्थ व अनादिनिधन वस्तुस्वरूप तथा भगवान आत्मा के

शुद्धात्मनिरूपक स्पष्ट, मधुर व महान उपकारी उपदेश उस ग्वाले के स्वच्छ मनमंदिर में समाने लगा। इस समय ''मैं ग्वाला हूँ गायों का संरक्षण संवर्धन, पालन–पोषण करना मेरा कार्य है'' इत्यादि अपनी तात्कालिक पर्याय–अवस्था का उसे सर्वथा विस्मरण हो गया था। संतोषामृत से तृप्त महायोगी के उपदेश सुनने के लिए ही मेरा जीवन है, ऐसी भावना उसके मन में जन्म ले रही थी।

उपदेश समाप्ति पश्चात् सभी सभ्य समागत श्रोता तो चले गये, तथापि कौण्डेश उपदेशित विषय के चिन्तन में ही मग्न होने से पेड़ की तरह वहीं खड़ा रहा। कुछ समय बाद मानों नींद में से ही जागृत हो गया हूँ – ऐसा उसे लगा। देखता है तो सूर्य उस दिन की अपनी यात्रा समाप्त करके आकाश के पश्चिमी छोर से समस्त विश्व को अरूण किरणों से आवृत कर रहा हो। मानों दिगम्बर साधु के होनेवाले वियोग से वह स्वयं दुःखी हो रहा हो। अज्ञानी लोग आनेवाले गाढ़ अन्धकार को न जानकर मनमोहक कोमल अरूण किरणों में ही मोहित हो रहे थे।

कौण्डेश वहाँ से गायों के पास आया और उन्हें हाँककर घर ले जाने लगा। इतने में बहुत जोर से वर्षा होने के कारण वह सम्पूर्ण भीग गया। प्रतिदिन गायों को गो–शाला में बांधकर भोजन करके सो जानेवाला वह ग्वाला आज कुछ भी खाये–पिये बिना ही सो गया।

सो तो गया; लेकिन रातभर उसे नींद नहीं आयी। वह मुनिमहाराज के उपदेश का ही चिन्तन–मनन करता रहा। अपनी बालबुद्धि के अनुसार सत्यासत्य का निर्णय करने की चेष्टा में निमग्न हो गया। यदि वस्तुस्वरूप मुनिमहाराज के उपदेशानुसार है तो मानव का दिन–रात चलनेवाला प्रयत्न क्या इन्द्रजाल है ? यदि आत्मा शाश्वत है तो जन्म–

मरण का क्या अर्थ है ? इसप्रकार चिन्तन करते–करते प्रातःकाल हो गया। सुबह के काम के लिए कौण्डेश उठा ही नहीं। उलझन भरे भावना लोक में विचरते हुए उसे बाह्य जगत की कुछ परवाह नहीं थी। अतः उसे ढूंढते–ढूंढते उसका मालिक गोशाला में आ गया। उसने लेटे हुए कौण्डेश के शरीर पर हाथ रखा तो उसे गरम लोहे पर हाथ रखने जैसा अनुभव हुआ।

कौण्डेश ज्वर–पीड़ित था, क्योंकि शरीर बारिश में भीग गया था, रातभर नींद भी नहीं आई थी। मालिक को भय–सा लगा। उसने शीघ्र ही वैद्यों को बुलाकर उपचार कराया। अनेक प्रयत्न करने पर भी ज्वर सप्ताह पर्यंत उतरा ही नहीं। कौण्डेश बहुत अशक्त हो गया। ज्वर उतरने के एक सप्ताह बाद भी गायों को चराने के लिए वह जंगल में नहीं जा सका।

इन दो सप्ताहों के अन्तराल में केवल कौण्डेश के शरीर और विचारों में ही परिवर्तन हुआ हो ऐसा नहीं था, किंतु जंगल की स्थिति भी आमूलचूल बदल गयी थी। निसर्ग–प्रकृति मानव की इच्छानुसार रहे –ऐसा बिल्कुल नहीं है। जड़पुद्गलों की सत्ता–अस्तित्व भी स्वतंत्र है। उनमें परिवर्तन भी स्वतंत्र ही होता रहता है। उस परिवर्तन के लिए किसी परिवर्तनकार भगवान की अथवा विशिष्ट मानव की अनादिकाल से आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न–भिन्न अपनी–अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती रहती हैं।

कौण्डेश दो सप्ताह के बाद गायों के साथ उसी पुरानी जगह जाकर देखता है कि हरे–भरे वृक्षों से भरा वह कानन आग की चपेट में आकर श्मशान सदृश भस्मीभूत हो गया है। वृक्षों की शाखाओं

में घर्षण हो जाने से उत्पन्न अग्नि सम्पूर्ण अरण्य की आहुति ले चुकी थी। शिकायत भी किससे करें? कौन सुनेगा?

**प्रत्येक जड़–चेतन वस्तु में उनकी योग्यता के अनुसार ही सतत परिवर्तन होता रहता है। ज्ञानी जीव इस स्वाभाविक परिवर्तन को सहज स्वीकार करके सुखी रहता है और अज्ञानी व्यर्थ ही राग–द्वेष करके दुःखी होता है। इस विश्व में किसी भी जीव को अन्य कोई जीव अथवा जड़ पदार्थ सुखी–दुःखी कर ही नहीं सकते, यह तो त्रिकाल अबाधित सत्य है।**

जंगल में सर्वत्र दृष्टिपात करने से यहाँ–वहाँ केवल पर्वत के शिखर ही दिखाई दे रहे थे। एक भी वृक्ष का नामोनिशान नहीं था। आश्चर्यचकित उस बाल–ग्वाले ने चारों तरफ नज़र घुमाकर देखा तो पास ही में किसी एक वृक्ष का तना–सा दिखाई दिया। तथापि उसे विश्वास नहीं हुआ – कोई चट्टान–सी लगी। इस दावानल में वृक्ष का तना कैसे सुरक्षित रह सकता है ? इसी संदेह के साथ वह आगे बढ़कर देखता है तो वह एक विशाल वृक्ष ही था। इसके ऊपरी भाग को कब किसने काटा था, सर्वज्ञ ही जाने। वह तना आग की लपेट में न आकर पूर्ण सुरक्षित बच गया था। अब उस वृक्ष के ऊपरी भाग में पुनः नई डालियाँ और पत्ते भी आने लगे थे। यह जानकर कौण्डेश को परम आश्चर्य हुआ।

इस विशाल भयंकर वन को किसने जलाया और वृक्ष के मात्र इस हरे–भरे तने को किसने बचाया ? काल की गति विचित्र है। प्रत्येक वस्तु का स्वभाव स्वतंत्र व अद्भुत है। वह कानन अपनी योग्यता से जल गया और यह तना अपनी योग्यता से बच गया।

वस्तुस्वरूप ही ऐसा है-ऐसा सोचकर उसका ध्यान 15 दिन पूर्व सुने हुए मुनिराज के उपदेश की ओर चला गया।

जंगल में साधु महापुरुष ने द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतंत्रता की बात कही थी। वह कथन सर्वथा सत्य है। हम उस स्वतंत्रता को न मानते हुए, अपने अज्ञान से अपना ही अहित कर रहे हैं।

इसप्रकार सोचता हुआ कौण्डेश उस वृक्ष के तने के पास पहुँचकर देखता है कि तने के कोटर में ताड़पत्र सुरक्षित हैं। ताड़पत्रों को बाहर निकालकर देखते ही पता चलता है कि ये केवल ताड़पत्र ही नहीं लेकिन ताड़पत्रों पर शास्त्र लिपिबद्ध हैं। ग्वाले ने सोचा - इस शास्त्र की सुरक्षा हो इस कारण से ही यह तना बच गया है अन्यथा यह कैसे संभव था ?

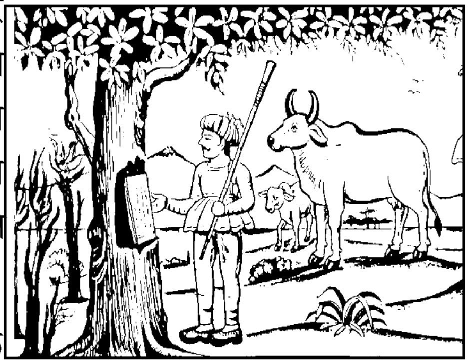

उसे याद आया कि आत्मा के चिर-अस्तित्व का निरूपण करते हुए उस दिन मुनीश्वर ने कहा था -''आत्मा धूप से नहीं मुरझाता, जल में नहीं भीगता, अग्नि से नहीं जलता, तीक्ष्ण धारवाले खड्ग से नहीं भेदा जा सकता''- इस शास्त्र में भी ऐसे ही आत्मा का विवेचन होगा इसलिए ऐसी भयंकर अग्नि में भी वह सुरक्षित रह गया है।

'परमशांत मुद्राधारी उन मुनिमहाराज ने मुझे मेरी आत्मा का वास्तविक स्वरूप समझाया है। अतः मुझे भी उन्हें यह अदाह्य-न जलनेवाला अमूल्य ग्रंथ देकर कृतार्थ होना चाहिए। इससे गुरु के मुख से शास्त्र सुनना सार्थक हो जायेगा। मेरी कृतज्ञता भी व्यक्त होगी'

इसी निर्णय के साथ कौण्डेश वन में मुनिमहाराज को खोजने लगा।

किसी विशिष्ट साधन के बिना ही ''यहाँ होंगे, वहाँ होंगे'' इस प्रकार सोचते हुए ढूंढ़ते हुए अनेक छोटे–बड़े पर्वत शिखरों पर चढ़कर फिर उतरकर अनेक गिरि–कन्दराओं में अन्दर जाकर देखा, पर कहीं भी मुनीश्वर का संकेत भी नहीं मिला। उसी समय ग्वाले को गायें कहीं चली न जाएँ – ऐसा भय भी लगा, पर तत्काल ही यह विचार भी आया कि – ''प्रत्येक पदार्थ अनादि से स्वयं से है – स्वयंभू है। तथा उसका परिणाम भी स्वतंत्र है। एक पदार्थ के परिणमन में अन्य किसी पदार्थ की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इस विश्व में सब स्वतंत्र हैं। अज्ञानी वस्तुस्वरूप को न जानने से व्यर्थ ही दुःखी होता है।'' इस चिरंतन सत्य तत्त्व के स्मरण से उसे संतोष हुआ और पुनः उत्साह से गिरि–कन्दरों में मुनिराज को खोजने लगा।

इसीप्रकार कौण्डेश अनेक गिरि–कन्दराओं पर चढ़ता–उतरता चला जा रहा था। इसी बीच सूर्य की प्रखर उष्णता में एक शिला पर विराजमान ध्यानस्थ मुनीश्वर के पावन दर्शन हुए। आनंद विभोर होकर वह अतिशीघ्रता से मुनिराज के पास पहुँचा। उसने तत्काल जान लिया कि ये सच्चिदानन्द, ज्योतिपुंज, शांत, गंभीर तथा विशेष सौम्य मुद्राधारी वे ही मुनीश्वर हैं, जिन्होंने मुझे आत्मबोध दिया था। उसने साधु महापुरुष को अत्यन्त भक्तिभाव से साष्टांग नमस्कार किया।

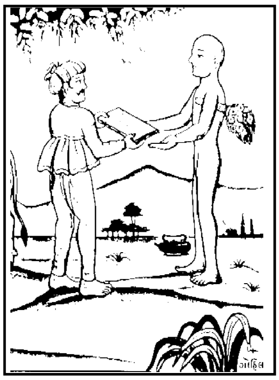

तब अतीन्द्रिय आनंद में लवलीन अर्थात् शुद्धोपयोग से शुभोपयोग की ओर आने वाले मुनिराज ने अवनि और अम्बर के मध्य में स्थित कोमल किरण सहित बालभास्कर के

समान अत्यन्त मनोहारी, सुखदायक अपने नेत्रयुगलों को खोलकर देखा। मात्र भगवान आत्मा को ही देखने की प्रवृत्ति वाले उन मुनिराज को कौण्डेश के हाथों में मक्खी के पंख से भी पतले परदे में आवृत्त ज्ञाननिधि ही दिखाई दी। मुनिराज के आर्शीवाद रूपी जल से अभिषिक्त कौण्डेश ने अत्यन्त विनम्र एवं पूर्णभाव से मुनि पुंगव से निवेदन किया – ''हे प्रभो ! आपके उपदेशामृत के फलस्वरूप स्वयमेव प्राप्त हुआ यह ग्रंथ आप स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें'' ऐसा कहकर उसने ताड़पत्र–ग्रंथ को मुनिराज के पवित्र करकमलों में अति विनम्रभाव से समर्पित किया।[1]

इस शास्त्रदान के फलस्वरूप ज्ञानावरण कर्म पटल हटते गये – ज्ञान विकसित होता गया। दैवयोग से प्राप्त वह ग्रंथ–निधि मुनिराज को समर्पित कर कौण्डेश जहाँ गायें चर रही थीं उस स्थान की ओर तत्काल शीघ्र गति से चला। तथा सूर्य कौण्डेश से भी तीव्रतर गति से पश्चिम की ओर गमन कर रहा था। सूर्यास्त से पहले ही गायों को लेकर घर पहुँचने की आशा से कौण्डेश क्रमशः आनेवाले सभी पर्वतशिखरों पर चढ़–उतर कर गायों के पास पहुँच गया। उस समय सूर्यास्त होने से अन्धकार छा रहा था। कौण्डेश को देखकर सभी गायों ने रंभाकर उसका स्वागत किया। उसका संकेत पाकर सभी गायें घर की ओर जाने लगीं।

समय रात्रि का था। कौण्डेश गायों के पीछे–पीछे चलता हुआ

---

1. ''कोण्डेश उस ताडत्रीय उस भाग्वत् शास्त्र को अति विनयपूर्वक अपने घर में ले आया और योग्य उच्चस्थान में विराजमान कर प्रतिदिन उसकी विनय–वंदना करता एवं एक दिन सेठजी के घर एक मुनिराज के आहार हुए, तब उसने अति उत्कृष्ट भाव पूर्वक वह ग्रंथ उन्हें भेंट कर दिया।'' – ऐसा लेख जैनधर्म की कहानियाँ भाग–13 में मिलता है।

दिन में घटित घटनाओं का स्मरण कर रहा था। गांव के निकट एक वृक्ष के कोटर में से कुछ आवाज आई, जिससे डरकर गायों का झुंड भागने लगा। अपने पाँव से किसी एक चीज को झटकाकर एक गाय भाग गयी। गायों के पीछे आनेवाले कौण्डेश को किसी मुलायम चीज के ऊपर पाँव रखने का–सा आभास हुआ; वह जोर से चिल्ला उठा और वहीं गिर गया। वहाँ से गुजरनेवाले एक व्यक्ति ने नजदीक जाकर प्रकाश द्वारा देखा तो ज्ञात हुआ कि कौण्डेश को साँप ने काट लिया है, तथा उसके पैर से खून बह रहा है।

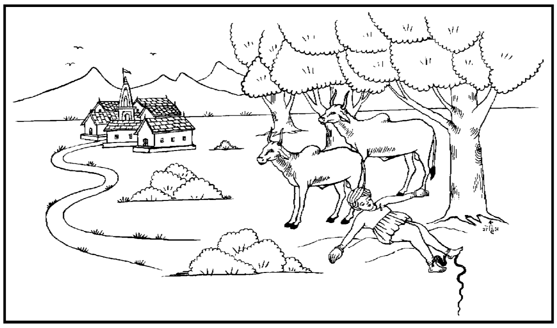

गांव के पास ही यह घटना घटी थी। अतः थोड़े ही समय में यह समाचार गांव भर में फैल गया। मालिक घबराकर भागता हुआ घटनास्थल पर आया और कौण्डेश को घर ले गया। वैद्यों ने उसे बचाने का सम्पूर्ण प्रयास किया। मंत्र–तंत्र भी किये गये; पर कौण्डेश जीवित नहीं रह सका। अंतिम श्वास लेते समय भी उसने कहा –

''मैं नहीं मरता, मैं तो अजर–अमर हूँ। मैं आत्मा हूँ और मुझमें जन्म–मरण है ही नहीं। मैं अनादि–अनंत ज्ञान व सुखमय भगवान अत्मा हूँ।'' इसप्रकार हकलाते हुए बोलकर वह सदा के लिए मौन हो गया।

कौण्डेश की निर्भयता बुद्धिमत्ता और दृढ़ता जानकर गाँव के सभी लोग आश्चर्यचकित हुए। प्रतिष्ठित पुरुष की भाँति उसका अंतिम संस्कार किया गया।

**वर्तमान भव –**

वर्तमान आन्ध्रप्रदेश के अंतर्गत आने वाले अनंतपुर जिले के गुटि तहसील में कौनकोण्ड़ नामक गांव है। यह गांव गुंतकल रेल्वे स्टेशन से दक्षिण दिशा में पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। प्राचीन शिलालेखों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गांव पहले कर्नाटक राज्य में था।

प्राचीन काल में कोण्डकुंद या कोण्डकुन्दे नामक एक बहुत बड़ा शहर था, जहाँ वर्तमान में इसी नाम से छोटा सा ग्राम है; गांव के निकट लगभग 150 फीट ऊँचा एक पर्वत है।

वहाँ उपलब्ध एक शिलालेख में लिखा है – ''यह स्थान विश्व में सर्वश्रेष्ठ है। संसार–सागर को पार करने के लिए नौका समान अनेकांत विद्या है। उस विद्या के बल से विश्व को जीतनेवाले यतिश्रेष्ठ पद्मनंदि भट्टारक की यह जन्मभूमि है।''

उस समय जिनकंची और पेनगोंडे नामक प्रभावशाली समर्थ संस्थाओं का उद्भव हुआ, जिनके सहयोग एवं नेतृत्व में दक्षिण भारत में सत्य–सनातन जिनधर्म का प्रचार–प्रसार तेजी से हो रहा था। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के दक्षिण भारत में आने पर यहाँ जिनधर्म का प्रचार–प्रसार उत्कृष्ट रीति एवं तीव्र गति से होने लगा था।

कोण्डकुन्दपुर जैनों का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ पेनगोंडा संघ के मुनिराजों का विहार पुनः पुनः होता था एवं मुनिश्वरों के निमित्त से तत्त्वचर्चा, धर्मोपदेश एवं पण्डितों के प्रवचन भी होते रहते थे।

नगरसेठ गुणकीर्ति मुनियों की सेवा–सुश्रुषा में अत्यधिक रुचि लेते थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शान्तला भी पति के समान धर्मश्रद्धालु

नारीरत्न थीं। पूर्व पुण्योदय के कारण उनको किसी भी प्रकार के भौतिक वैभव की कमी नहीं थी। रूप–लावण्य, यौवन, कीर्ति और संपदा सभी से सुसम्पन्न होने पर भी उन्हें अपने वंश के उत्तराधिकारी पुत्ररत्न का अभाव खटकता था और यह अभाव दोनों को भस्मावृत अंगारे के समान सतत जलाता रहता था। गुरुमुख से संसार–स्वरूप का वर्णन का वर्णन सुनकर कुछ क्षण के लिए अपना दुःख भूल जाते थे, परन्तु दूसरे ही क्षण पुत्र का अभाव उन्हें पीड़ा देता था। ऐसा होने पर भी पुत्र–प्राप्ति के लिए वे कुदेवादि की शरण में तो गए ही नहीं, लेकिन ऐसा अज्ञानजन्य अन्यथा उपाय का विचार भी उनके मन में नहीं आया। फिर किसी से प्रार्थना करना तो दूर की बात है।

वे दोनों पति–पत्नी वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी सच्चे देव के स्वरूप को निर्णयपूर्वक जानते थे। कोई किसी को अनुकूल–प्रतिकूल वस्तुयें दे नहीं सकता और कोई अन्य वस्तु जीव को सुख–दुःख देनेवाली है ही नहीं। अनुकूलता–प्रतिकूलता तो पूर्वकृत पुण्य–पाप कर्मोदय का कार्य है। उन्हें वस्तुस्वरूप का ऐसा यथार्थ तथा निर्मल ज्ञान था, तथापि पुत्र का अभाव उन्हें अन्दर ही अन्दर शल्य की तरह खटकता था।

कालचक्र अपने स्वभाव के अनुसार गतिमान था ही। उसे कौन और कैसे रोकेगा? और काल रुकेगा भी कैसे? सेठ गुणकीर्ति और सेठानी शांतला तत्त्वचिन्तनपूर्वक पूर्व–पुण्योदयानुसार अपना जीवन यापन करते थे। इसी बीच पेनगोंडा से एक समाचार आया जिसका सार है –

“फाल्गुन की अष्टाह्निका महापर्व में पूजा, महोत्सव के साथ करने का निर्णय किया है, आप दोनों इस धर्म कार्य में जरूर आवें।

प्रवचन, तत्त्वचर्चा तथा भक्ति आदि का लाभ लेवें। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे अवसर का लाभ लेना चाहिए।''

समाचार जानकर गुणकीर्ति सेठ को विशेष आनन्द हुआ। ''हम उचित समय पर पेनगोंडे पहुँचेंगे'' – ऐसा संदेश पत्रवाहक के द्वारा भेज दिया और निश्चित समय पर पेनगोंडे पहुँच गये।

जिसप्रकार स्वर्ग के देव नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों की अष्टाह्निका पर्व में पूजा करते हैं, उसी प्रकार गुणकीर्ति और शान्तला ने पेनगोंडे के पच्चे (जिनमन्दिर) श्री पार्श्वनाथ भगवान की आठ दिन में महामह नामक पूजा की। अष्टह्निका पर्व में योगानुयोग से आचार्य श्री जिनचन्द्र से अध्यात्म–विषय सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस कारण दोनों को मानसिक समाधान तो प्राप्त हुआ ही, साथ ही तत्त्वदृष्टि अधिक निर्मल व दृढ़ बन गयी। पर्वोपरान्त चतुर्विध संघ को आहारदान एवं शास्त्रदान देकर संतृप्त मन से वे घर लौटे।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर का जन्मकल्याणक धूम–धाम से मनाकर चतुर्विध संघ को भक्ति से आहार और शास्त्र दान दिया। तदनन्तर अक्षय तृतीया पर्व में चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान दिया। अन्य दिनों में भी यथाशक्ति भक्तिपूर्वक श्रावक के योग्य देवपूजा आदि पुण्यकार्यों में सहज सावधान रहते थे। इस तरह तीन माह केवल धर्म–श्रद्धा से अर्थात् आत्मशान्ति और भौतिक सुख से निरपेक्ष परिणामों से धर्म–साधना करते रहे। इनका फल उन्हें शान्ति व समाधान तो मिला ही एवं पुत्र अभावजन्य जो आकुलता थी, वह भी नहीं रही। **दृष्टि एवं ज्ञान सम्यक् हो जाने से लौकिक कामनाएँ स्वयमेव लुप्त हो गई। प्रकाश के आगमन से अंधकार का निर्गमन स्वयमेव होता है, उसे भगाना नहीं पड़ता।**

सेठ गुणकीर्ति और शांतला के दिन तत्त्वचितवन के साथ सुखपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। एक दिन पिछली रात्रि के समय शांतला ने दो स्वप्न देखे– प्रथम स्वप्न में एक धवल, पुष्ट एवं सुन्दर बैल अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देखा। दूसरे स्वप्न में आकाश के ठीक मध्य में अपनी अतिशीतल व कोमल किरणों से समग्र पृथ्वीतल को शुभ्र बनाता हुआ पूर्ण मनोहर अमृतमय चंद्र का अवलोकन किया।

स्वप्न पूर्ण होने पर निद्रा भंग हुई। शांतला जाग गईं। समीप ही सोये हुये पति गुणकीर्ति को निद्रित अवस्था में ही छोड़कर वह शयन गृह से बाहर आईं। स्नानादि नित्य क्रियाओं से निवृत्त होकर धवल वस्त्र पहनकर अपने गृह–चैत्यालय में प्रवेश किया। वीतराग–सर्वज्ञ प्रभु का भक्तिभावपूर्वक दर्शन कर पूजन की, नित्य नियमानुसार जाप किये। इतने में ही गुणकीर्ति दर्शन के लिए चैत्यालय में आये। पश्चात् प्रतिदिन की भाँति स्वाध्याय प्रारंभ हुआ। जीवतत्त्व का प्रकरण चल रहा था। योगानुयोग से आज विषय सुलभ रीति से स्पष्ट हुआ। केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित भगवान आत्मा की बात सचमुच अलौकिक ही है – ऐसा दोनों के हृदय में टंकोत्कीर्ण हो गया।

स्वाध्याय पूर्ण करके शांतला अपने कक्ष में जाकर आसन पर बैठ गई। सोचने लगी – मुझे मेरा पुण्योदय ही समझना चाहिए कि योग्य पति का संयोग मिला, अन्यथा जीवन दुःखद हो जाता।

आज शांतला के मुख पर एक अपूर्व कांति झलक रही थी और अलंकार भी विशेषरूप से शोभायमान हो रहे थे। गुणकीर्ति भी सहजभाव से शांतला के कक्ष में आकर बैठ गये। मधुर हास्य से शान्तला ने गुणकीर्ति का स्वाभाविक स्वागत किया और प्रमोद व्यक्त करते हुए कहने लगी –

"हे प्राणप्रिये ! मैंने आज अर्धरात्रि के पश्चात् दो स्वप्न देखे हैं।" तदनन्तर शान्तला ने उन स्वप्नों का सानंद सविस्तार वर्णन किया और जिज्ञासा से फल पूछा।

गुणकीर्ति कुछ समय पर्यन्त किंचित् गंभीर रहे। निर्णय मात्र के लिए आँखें बंद करके कुछ विचार किया और पत्नी की ओर देखते हुए स्वप्न–फल कहना प्रारंभ किया– "हे प्रिये ! ये स्वप्न हमारी बहुत दिनों की इच्छा को पूरी करने वाले हैं। धवल वृषभ का प्रवेश धर्म दिवाकर स्वरूप पुण्यवान जीव तुम्हारे गर्भ में आया है यह सूचित करता है। और चंद्रमा की चाँदनी यह स्पष्ट करती है कि उस धर्म–दिवाकर के उपदेश से भव्यजीवों को सुख–शांति का मार्ग प्राप्त होगा।

स्वप्नफल–श्रवण से प्रमुदित शान्तला अपने पति से निवेदन करती है। प्राणनाथ ! मुझे पेनगोंडे जाकर पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन करने की तथा आचार्य जिनचंद्र के दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई है। कृपया शीघ्र व्यवस्था कीजिए, मेरा जीवन धन्य हो जायेगा।

दूसरे ही दिन पति–पत्नी दोनों पेनगोंडे पहुँच गये। वहाँ भगवान पार्श्वनाथ की अत्यंत भक्ति से पूजा की और भक्ति तथा कृतज्ञतापूर्वक आचार्य जिनचंद्र के दर्शन किए। अत्यन्त विनय से और उत्कंठित भाव से शान्तला देवी ने स्वप्न समाचार बताया। अष्टांग निमित्तज्ञानी आचार्य ने स्वप्नफल सुनाया।

"आपके गर्भ से आसन्नभव्य जीव जन्म लेनेवाला है। वह तीर्थंकरों द्वारा उपदेशित अनादि–अनंत, परमसत्य, वीतराग धर्म का प्रवर्तक बनेगा। और विशेष बात यह है कि भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद उसका ही नाम प्रथम लिया जाएगा। इस कारण

यह कोण्डकुन्दपुरनगर इतिहास में प्रसिद्ध होगा। पतितोद्धारक इस महापुण्यवान जीव ने पूर्वभव में एक दिगम्बर मुनीश्वर को शास्त्रदान दिया था। उस दान के पुण्य–परिणामस्वरूप ही कोण्डकुन्द नगर में वह तुम्हारे यहाँ जन्म ले रहा है। यह अपूर्व योग है।''

''प्रत्येक जीव को अपने परिणामों का फल मिलता है'' यह त्रिकाल अबाधित सिद्धान्त सहज रीति से समझ में आता है।

आचार्य श्री जिनचंद्र के उपदेश से दोनों के ज्ञान तथा श्रद्धा में विशेष निर्मलता तथा दृढ़ता आई। वीतराग धर्म के उद्धारक बालक को जन्म देनेवाले माता–पिता पेनगोंडे से घर लौटे। उसी दिन से उनके घर प्रतिदिन पूजा, दान, स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा आदि धार्मिक कार्य पहले से भी अधिक उत्साह से चलने लगे। कालक्रम से शान्तला की कुक्षि में गर्भ वृद्धि को प्राप्त हो रहा था।

**जन्म** – इसप्रकार बैसाख से आरम्भ होकर पौष मास बीत गया। शार्वरी संवत्सर का माघ मास प्रारम्भ हो गया। शुक्लपक्ष की पंचमी (बसंत पंचमी) के बाल भास्कर के उदय के साथ ही वृक्ष पर ही कली फूल बनकर पककर वृक्ष के साथ बना हुआ संयोग–संबंध समाप्त होने से डंठल से अलग होकर प्रकृति की गोद में गिरनेवाले फल के समान मंगलमय व मंगलकरण उस पुण्यात्मा ने भी नव मास के गर्भवास को पूर्ण कर कालक्रम के अनुसार भू–देवी की गोद में अपनी आँखें खोलीं।

उस समय सूर्यप्रकाश की प्रभा में भी किसी विद्युत समूह के चमकने जैसा आभास हुआ। उस प्रभातकालीन प्रशांत समय में शीतल सुगंधित पवन ने तरु–लताओं के पुष्पों को संग्रहीत करके पुष्पवृष्टि द्वारा आनंदोत्सव मनाया। उसी समय कालपुरुष एक कुलपर्वत पर युगपुरुष

के जन्मदिन के रूप में ई. स. पूर्व 108 शार्वरी संवत्सर के माघ शुक्ल की पंचमी को उकेर रहा था। उस दिन नगर सेठ गुणकीर्ति को अनेक वर्षों के बाद चिर अभिलषित पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी।

अतः सारे कोण्डकुन्दपुर नगरवासियों ने बड़े उत्साह के साथ आनंदोत्सव मनाया। नगर के सभी प्रमुख स्थानों पर ही नहीं, गली–गली में भी तोरण शोभायमान हो रहे थे। नगर के पाँचों प्राचीन भव्य जिनमंदिरों में पूजा आदि अतिभक्ति–भावपूर्वक हो रही थी। मंदिरों में बैठने के लिए जगह नहीं थी और घरों में तथा रास्तों पर कोई आदमी देखने को भी नहीं मिलता था। दीन–दुखियों के लिए भोजन की व्यवस्था भी की गयी थी।

दस दिनों के बीत जाने पर जन्मोत्सव मनाते हुए शिशु को सुवर्णमय सुन्दर पालने में लिटाकर अनेक सौभाग्यवती स्त्रियों ने मंगल गीत गाये। शान्तला माता ने अपने सपने में चन्द्रमा की चाँदनी देखी थी इसलिए शिशु का नाम पद्मप्रभ रखा गया। जन्मोत्सव के कारण पूरे नगर में बड़े–त्योहारों की भांति वातावरण नवचैतन्यमय बन गया था। यह आनंदोत्सव एक ही घर का मर्यादित नहीं रहा था, लेकिन बहुत व्यापक बन गया था। सेठ गुणकीर्ति ने भी अपने मित्रजनों की अभिलाषाओं की पूर्ति करने में कोई कसर न छोड़कर अपने गुणकीर्ति नाम को सार्थकता प्रदान की थी।

माघ शुक्ल पंचमी के दिन जन्मा हुआ बालक दूज के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा था। पद्मप्रभ तीन माह का हो गया था। यद्यपि उसकी सेवा–सुश्रूषा, संवर्धन के लिए अनेक धाय–माताओं की व्यवस्था की गयी थी। तथापि माँ शान्तला उसकी व्यवस्था में सदैव सावधान रहती थी; क्योंकि माता को अपने संतान

की व्यवस्था में स्वाभाविक रस होता है। संसार के स्वरूप और संसार परिभ्रमण के कारण से सुपरिचित माता शान्तलादेवी अपने पुत्र को सुसंस्कारित करने के लिए सदा जागृत रहती थी। शिशु को पालने में सुलाते समय सुकोमल मन आध्यात्मिक विचार से प्रभावित हो, इस भव्यविचार से खास अलौकिक लोरियाँ गाती थीं।

**प्रथम लोरि –**

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार मायापरिवर्जितोऽसि।।
शरीरभिन्नस्त्यज सर्वचेष्टां शान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।1।।
ज्ञाताऽसि दृष्टाऽसि परमात्मरूपो अखण्डरूपोऽसि गुणालयोऽसि।।
जितेन्द्रियस्त्यज मान–मुद्रां शान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।2।।

**अर्थ –** हे पुत्र ! तुम शुद्ध–बुद्ध–निरंजन हो, संसार की माया से रहित हो, शरीर से भिन्न हो; अतः अन्य सब चेष्टाओं को छोड़ो और शान्तला के वचनों को धारण करो।

**अर्थ –** तुम ज्ञान–दृष्टा और परमात्म स्वरूप हो, अखण्डरूप और गुणों के घर निवास स्थान हो, जितेन्द्रिय हो और मानादि सम्पूर्ण कषायों की मुद्रा (अवस्था) का त्याग करो – ऐसे शान्तला माता के वचनों का तुम अनुसरण करो।

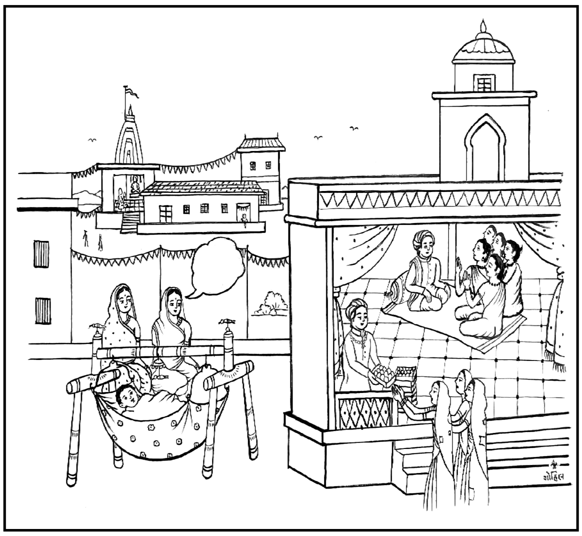

शान्तोऽसि दान्तोऽसि विनाशहीनः सिद्धस्वरूपोऽसि कलंकमुक्तः।
ज्योतिस्वरूपोऽसि विमुंच मायां शान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।3।।

**अर्थ –** हे पुत्र ! तुम शांत, आत्म संयमित, अविनाशी, सिद्धस्वरूप, सर्व प्रकार के कलंक (मलदोषादि) से रहित और ज्योतिस्वरूप हो; संसार की माया को त्याग कर शान्तला माता के वचनों को ग्रहण करो।

कोमल–निर्मल बालमन के ऊपर सर्वोत्तम संस्कार डालने की इच्छुक माता के इसप्रकार के कर्णमधुर एवं संबोधनस्वरूप गीत सुनकर वह शिशु कैसे सो सकता था ? सो जानेवाले शिशु को इसप्रकार के अपूर्व–अलौकिक संस्कार डालने के भाव भी किसी को कैसे आ सकते थे? प्रत्येक जीव के भवितव्यानुसार उसे अन्य जीवों का संयोग स्वयमेव मिलता है। भले इष्ट संयोग मिलाने का जीव कितना भी प्रयास करे, पर उस जीव के भवितव्यानुसार ही संयोग में आने वाले जीवों को संकल्प–विकल्प होते हैं।

माता शान्तला की मधुर लोरियाँ सुनकर वह शिशु आँखें बंद करके केवली प्रणीत तत्त्व का मनन–चिन्तन करते हुए गंभीर हो जाता था। बालक की यह बात हमें आश्चर्यकारक तो लगती ही है; लेकिन साथ ही साथ असत्य–सी लग सकती है, क्योंकि तीन महीने का बालक तत्त्वचिंतन कैसे और क्या करेगा?

पर हमें भी तो यह सोचना चाहिए कि बाल्यावस्था शरीर की अवस्था है या आत्मा की? आत्मा अनादिकाल से भी कभी बालक हुआ नहीं और होगा भी नहीं। जहाँ आत्मा बालक हो नहीं सकता तो वह वृद्ध भी हो ही नहीं सकता। इतना ही नहीं, आत्मा के जन्म–मरण भी नहीं हो सकते। आत्मा तो स्वरूप से अनादि–अनंत,

एकरूप, ज्ञान का घनपिंड और आनन्द का रसकन्द है। जब तक संयोगदृष्टि से वस्तु को देखने का प्रयास चलता रहेगा तब तक वस्तु का मूल स्वभाव–समझकर धर्म प्रगट करने का सच्चा उपाय समझ में नहीं आयेगा, वहाँ धर्म – मोक्षमार्ग सुखशांति समाधान वीतरागता कैसे प्रगट होगी ?

एकबार शिशु पद्मप्रभ रोने लगा। धाय ने उसको पालने में सुलाकर पालना झुलाया। परन्तु शिशु का रोना बंद नहीं हुआ। धाय ने शिशु न रोवे, शांति से सो जाय अथवा खेलता रहे इसलिए विविध प्रयत्न किये, परन्तु सभी विफल गये। अतः माता शान्तला को बुलाया। उसने लोरियाँ सुनाना प्रारम्भ किया ही था कि, इतने में बालक स्वयमेव शांत हो गया।

**द्वितीय लोरी –**

''एकोऽसि मुक्तोऽसि चिदात्मकोऽसि चिद्रूपभावोऽसि चिरन्तनोऽसि।
अलक्षभावो जहि देहभावं।शान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।1।।

**अर्थ –** हे पुत्र तुम एक, मुक्त, चैतन्यमय, चिद्रूप, चिरन्तन (अनादि–अनंत) अगम्य (अतीन्द्रिय) हो; देह के एकत्व–ममत्व को छोड़कर शान्तला माता के वाक्य का सेवन करो।

निष्कामधामोऽसि विकर्मरूपोऽसि रत्नत्रयात्मकोऽसि परमपवित्रोऽसि।।
वेत्ताऽसि चेत्ताऽसि विमुंचकामम्। शान्तला सा वाक्युमुपासि पुत्र।।2।।

**अर्थ –** हे पुत्र तुम निष्कामस्वरूप (सम्पूर्ण इच्छाओं से रहित), कर्मों से मुक्त, रत्नत्रयात्मक, परम पवित्र, तत्त्वों के वेत्ता और चेता (ज्ञाता–द्रष्टा) हो। समस्त इच्छाओं का त्याग करो– शान्तला माता के इस वाक्य के भाव को धारण करो।

प्रमादमुक्तोऽसि सुनिर्मलोऽसि अनंतबोधादि चतुष्टयोऽसि।
ब्रह्माऽसि रक्ष स्वचिदात्मरूपं शान्तला सा वाक्युमुपासि पुत्र।।3।।

**अर्थ –** प्रमाद से रहित, सुनिर्मल, अनंतज्ञानादि चतुष्टयात्मक ब्रह्मा हो। अपने चैतन्य स्वरूप की रक्षा करो।शान्तला माँ के ऐसे वचनों को ग्रहण करो।''

शिशु को सोता हुआ जानकर माता लोरी गाना बंद करके सो गयी। गाढ़ निद्राधीन हो गयी। एक घंटे के बाद शिशु ने फिर से रोना शुरू किया। धाय ने उठकर शिशु को झुलाया। माता शान्तला के समान उसने भी लोरी गाई, तथापि रोना बन्द नहीं हुआ, उल्टा रोना तेज हो गया। ''निद्रित स्वामिनी शान्तला को जगाना उचित नहीं'' ऐसा सोचकर धाय ने अनेक उपायों से पद्मप्रभ को सुलाने का प्रयास किया। लेकिन सभी प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। माता के मुख से मधुर अध्यात्म सुनने की शिशु की इच्छा को धाय कैसे जान सकती थी?

इसके बाद स्वामिनी शान्तला को बुलाना अनिवार्य है ऐसा समझकर धाय ने उन्हें बुलाया। ''यह रोना बंद ही नहीं कर रहा है, उसे भूख लगी होगी, दूध पिलाइये।'' इसप्रकार धाय ने शान्तला से कहा। गहरी निद्रा से जागृत शान्तला ने शिशु के पास जाकर देखा। प्रिय प्रद्मप्रभ आँखें खोलकर रो रहा है। यह भूख के कारण नहीं रो रहा है, ऐसा जानकर अध्यात्मज्ञान से मानों मंत्रित करने के लिए ही शान्तला लोरियाँ बोलने लगी–

**तृतीय लोरी –**

कैवल्यभावोऽसि निवृत्तयोगो निरामयो शान्तसमस्ततत्त्वः।
परमात्मवृत्तिं स्मर चित्स्वरूपं शान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।1।।

**अर्थ –** हे पुत्र ! तुम केवल्यभाव से युक्त (केवलज्ञान–

केवलदर्शन सहित अथवा नौ केवललब्धियों से युक्त) हो, योगों (मन–वचन–काय) से निवृत्त हो, निरामय हो, समस्त तत्त्वों के वीतरागी ज्ञाता हो, परमात्मस्वरूपी अपने चैतन्यतत्त्व का स्मरण करो – यह शान्तला माता के वचन हैं, हे पुत्र ! इनकी तुम उपासना करो।

चैतन्यरूपोऽसि विमुक्तभारो भावादिकर्मोऽसि समग्रवेदी।
ध्याय प्रकामं परमात्मरूपंशान्तला सा वाक्यमुपासि पुत्र।।2।।

**अर्थ –** हे पुत्र ! तुम चैतन्य स्वरूप हो, भावकर्म, द्रव्यकर्मों के भार से रहित हो, सर्वज्ञ हो, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करके शान्तला माता के वचनों का अनुशरण करो।

वीणा की कर्णमधुर आवाज सुनकर जैसे सर्प फण उठाकर स्वयमेव सहज आनन्दित होता है, उसीप्रकार शुद्धात्मस्वरूप की अनुपम ध्वनि तरंगों को सुनकर वह शिशु अध्यात्मविद्या से मुग्ध हो गया। सर्व शारीरिक चेष्टायें बंद हो गईं, आँखें मात्र खुली थीं। मानो शरीर आदि सर्व परद्रव्यों को भूल गया हो। माता शान्तला भी गीत की विषयवस्तु के साथ तन्मय होकर लोरियाँ प्रभातीराग में गा रही थीं। इस आवाज को सुनकर ही गुणकीर्ति जाग गये और पुत्ररत्न का मुखावलोकन करने के लिए आये। पति के आगमन से शान्तलादेवी की समाधि भग्न हो गयी। उसने हास्यवदन से पति का स्वागत किया। गुणकीर्ति ने भी हँसते हुए स्वागत को स्वीकार किया।

‘‘नाथ ! तीन दिनों से लाड़ला पद्मप्रभ न मुझे सोने देता है और न स्वयं सोता है। धायों के अनेक प्रकार के विशेष प्रयत्न के बावजूद भी यह शान्त भी नहीं होता, नींद लेने की बात तो बहुत दूर। किसी अच्छे वैद्य को दिखाकर सलाह लेना आवश्यक है। मुझे चिन्ता हो रही है।’’

''ठीक है, शान्तला ! अभी तो यह सो रहा है, सूर्योदय होने दो। नित्यकर्म–स्नानादि से निवृत्त होकर पूजन–स्वाध्याय करके मैं वैद्यराज को बुलाऊँगा, निश्चिंत रहो। सब ठीक हो जायगा।'' ऐसा कहकर गुणकीर्ति वहाँ से चले गये। शान्तला भी अन्य गृह–कार्य में लग गयी।

स्वाध्याय व तत्वचर्चा के बाद गुणकीर्ति ने चार वैद्यों को बुलाया वे चारों ही वैद्य वैद्यक–व्यवसाय में अनुभवी, लोक में प्रसिद्ध, सबके श्रद्धा–पात्र और महामेधावी थे। इनको ज्योतिषज्ञान भी था। इन चारों वैद्यों ने बालक का आरोग्यविषयक पूरा तथा सूक्ष्म परीक्षण अपनी–अपनी बुद्धि व पूर्वानुभव के अनुसार किया, आपस में देर तक चर्चा भी की। और अन्त में निर्णयात्मक रीति से सेठजी से कहा –

''आदरणीय नगरसेठ ! इस भाग्यवान बालक में शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से कोई न्यूनता – कमी नहीं है। रोग होने का तो प्रश्न ही नहीं है। शरीर पूर्ण स्वस्थ है। इस बालक को कुछ तकलीफ भी नहीं है। इसे नींद बहुत कम आती है – बहुत कम समय सोता है ऐसी आपकी खास शिकायत है। आपका कहना तो बिलकुल सही है। बुद्धि की विशेष तीक्ष्णता के कारण उसे नींद कम आना स्वाभाविक ही है। इस कारण आपको चिन्ता करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। अल्प निद्रा के कारण बालक के स्वास्थ्य पर किंचित्मात्र भी अनिष्ट परिणाम नहीं है। इस उमर में अब वह जितना सोता है उतनी नींद उसे पर्याप्त है। आठ प्रहर में एक अथवा डेढ़ प्रहर सोयेगा तो भी बहुत है। आप निश्चिंत रहिएगा।''

भो श्रेष्ठीवर ! इस भूमण्डल पर आप जैसा भाग्यशाली और कोई दिखाई नहीं देता। वैद्यक शास्त्र की रचना काल से लेकर अभी

तक इसप्रकार की विचक्षण बुद्धिवाला जीव नहीं जन्मा है। इसप्रकार असामान्य बुद्धिमान शिशु को जन्म देकर आपने विश्व पर महान उपकार किया है। इस बालक के उपकार का स्मरण विश्व ''यावत् चंद्र दिवाकरौ'' तक रखेगा। इस लोकोत्तर महापुरूष का बाल जीवन देखकर भी हमारा जीवन धन्य हो गया – कृतार्थ हो गया।

बड़े हो जाने के बाद की बुद्धि–प्रगल्भता के स्मरणमात्र से भी हमारा हृदय रोमांचित हो उठता है। इसकी वाणी को प्रत्यक्ष सुनने का सौभाग्य जिन्हें प्राप्त होगा, वे धन्य होंगे।

नगरसेठ ! जीवन की अन्तिम बेला में प्रज्ञाहीन होने पर भी यदि इस महापुरुष का एक वाक्य सुनने को मिल जाये तो वह हमारा भाग्य होगा। आज हमें जो आपने यहाँ बुलाया है, उसके लिए वह अलौकिक शब्दामृत ही हमारा पारिश्रमिक समझो। अभी हमारा यह पारिश्रमिक आपके पास ही धरोहर रूप में रहे – ऐसा कहकर बालक के चरणों का अति नम्रता और भक्तिपूर्वक वंदन करके – मस्तक झुकाकर चारों वैद्यराज वहाँ से चले गये।

कुछ ही दिनों बाद प्रिय पद्मप्रभ विषयक आनंददायक यह समाचार गांव–गांव में, नगर–नगर में, पुरजन–परिजन में फैल गया। पेनगोंडे और जिनकंची मुनिसंघ में भी इस सुखद समाचार को कुछ सज्जनों ने स्वयमेव पहुँचाया। श्रेष्ठीपुत्र की असामान्य बुद्धि की चर्चा ही साधारण जनमानस का एकमेव विषय बन चुकी थी। वन की अग्नि के समान यह चर्चा भी सर्वत्र फैल गयी।

पेनगोंड़े संघ के आचार्य जिनचंद्र को इस बालक के संबंध में पहले से ही पर्याप्त जानकारी थी; जिनकंची के आचार्य पुंगव अनंतवीर्य को पद्मप्रभ बालक रत्न का सुखद समाचार प्रथम ही सुनने

को मिला। श्री अनंतवीर्य आचार्य महामेधावी व अष्टांग निमित्तज्ञानी थे। कहा भी है – "**गुणी च गुणरागी च सरलो विरलो जनः**" अर्थात् स्वयं गुणवान होते हुए गुणी जनों के संबंध में प्रमोद व्यक्त करनेवाले ऐसे सरल लोग बहुत विरल होते हैं।

देखो ! वीतरागी महामुनिश्वरों को भी पद्मप्रभविषयक राग उत्पन्न होता था, ऐसा था वह बालकरत्न।

दिन–रात बीतते ही जा रहे थे। बालक पद्मप्रभ तीन वर्ष का हो चुका था। वह छोटे–छोटे कदम रखता हुआ घर–भर में इधर से उधर और उधर से इधर दिनभर दौड़ता था। तुतलाता हुआ गंभीर तत्त्व की बात करता हुआ सभी को आश्चर्य–चकित कर देता था।

माँ शान्तला भी उसे अपनी गोद में बिठाकर पंचास्तिकाय, छह द्रव्य, साततत्त्व, नवपदार्थ का ज्ञान कराती थी। विषय को समझने की जिज्ञासा जानकर यथायोग्य–यथाशक्य उनके स्वरूप का भी निरूपण करती थी। इसप्रकार पंचास्तिकाय, छहद्रव्य, सात तत्व, नवपदार्थ का प्राथमिक ज्ञान तो बालक पद्मप्रभ ने माँ की गोद में ही प्राप्त कर लिया।

तदनन्तर उसे अक्षर ज्ञान देना प्रारंभ हुआ। वह कण्ठस्थ पद्य को स्मरण करने के समान किसी भी विषय को सुलभता से ग्रहण कर लेता था। किसी कठिनतर विषय को भी एक बार कहने से उसे उसका ज्ञान हो जाता था। वह बालक किसी भी प्रश्न का सही व सार्थक उत्तर दे देता था।

दिन बीतते ही जा रहे थे। बालक की बुद्धि भी दिन–प्रतिदिन प्रौढ़ होती जा रही थी। इसलिए पठन–पाठन भी स्वाभाविक बढ़ता गया। घर ही विद्यालय बन गया। प्रौढ़, गम्भीर और दक्ष दो विद्वान

अध्यापक न्याय, छन्द आदि विषयों को पढ़ाते थे। साथ ही साथ तमिल, कन्नड़, प्राकृत, संस्कृत भाषाविद् भी प्रतिदिन अर्धप्रहर के कालांश क्रम से उस–उस भाषा शास्त्र को पढ़ाते थे। माता–पिता द्वारा धार्मिक संस्कार भी अखण्ड रीति से मिलते ही रहते थे।

इसी बीच जिनकंची संघ के ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध आचार्य पुंगव अनंतकीर्ति महाराज पेनगोंडे संघ के आचार्य श्री जिनचंद्र के साथ विहार करते–करते कोण्डकुंदपुर नगर के समीप आ गये। ये दोनों निर्ग्रन्थ मुनिराज श्रेष्ठीपुत्र के तीव्रतर बुद्धि, विशेष स्मरण शक्ति व कल्पना चातुर्य पर मुग्ध थे। प्रतिदिन किसी न किसी बहाने से होनहार पद्मप्रभ को अपने पास बुलाते थे और प्रश्न पूछा करते थे और उत्तर पाकर प्रभावित होते थे।

वयोवृद्ध अनंतवीर्य मुनिराज अपने उपदेश में विश्व के सकल चराचार पदार्थों का स्वरूप, धर्माधर्म का स्वरूप, निश्चय–व्यवहार, उपादान–निमित्त, आत्मस्वरूप और स्व–पर कर्तृत्व की परिभाषा इत्यादि सूक्ष्म विषयों का विवेचन करते थे। पद्मप्रभ की पात्रता बढ़े ऐसा प्रयास भी करते थे। बालक की ग्रहण शक्ति को देखकर उसे उत्साहित करते थे। बालक को छोड़कर जाने के लिये उनका मन नहीं होता था। इसको साथ ले जाने का विचार प्रगट न करते हुए भी धर्ममय वात्सल्य भाव से क्वचित्–कदाचित् विचारमग्न भी हो जाते थे। अन्त में अपनी मुनि–अवस्था का और वीतराग धर्म के यथार्थ स्वरूप का स्मरण कर उन्होंने वहाँ से अन्यत्र विहार कर ही दिया।

प्रस्थान प्रसंग पर अकस्मात् ही जनसमूह जुड़ गया। वह महामुनियों के साथ दूरपर्यंत चला जा रहा था। उनमें से मात्र गुणकीर्ति को बुलाकर उनसे कुछ कहकर वे आगे विहार कर गये। बाद में

उन्होंने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। सेठ गुणकीर्ति कुछ क्षण तो गंभीर तथा स्थिर हो गये। बाद में नगर की ओर वापिस आ गये।

बालक पद्मप्रभ दस वर्ष पूर्ण करके ग्यारहवें वर्ष में पदार्पण कर रहा था। इस दशकपूर्ति के उत्सव को अर्थात् जन्म–दिवस की दसवीं वर्षगांठ को बड़ी धूमधाम से मनाने का निर्णय सेठ गुणकीर्ति और माता शान्तला ने किया। तीन दिन का कार्यक्रम निश्चित करके उसमें नित्य पूजन, नैमित्तिक पंचपरमेष्ठी विधान, चतुर्विध संघ को आहारदान, शास्त्रदान, तत्त्वचर्चा, धर्मगोष्ठी आदि कार्यक्रम निश्चित किए।

आजकल हम–आप भी अपने बालकों का जन्मदिन मनाते हैं; परन्तु जन्मदिन मनाने में कौन–सा गम्भीर मर्म छिपा है, क्या हमने इसके संबंध में थोड़ा–सा भी कभी विचार किया? विचार किया होता तो ऐसे अज्ञानमय कार्य हम कभी नहीं करते। आपके मन में प्रश्न होना स्वाभाविक है कि क्या जन्मदिन मनाना अज्ञानमयकार्य है? इस विषय में हमें कुछ सोचना जरूरी है।

हम किसका जन्मदिन मना रहे हैं? चैतन्यरूपी आत्मा का अथवा चैतन्यरहित–जड़ पुद्गलमय शरीर का? प्रथम हम यह देखें–सोचें कि चैतन्यस्वरूपी आत्मा के जन्म–मरण होते हैं या नहीं? आत्मा के जन्म–मरण नहीं होते; क्योंकि आत्मा अनादि अनंत है, फिर उसे जन्म–मरण कैसे? अतः हम जड़–पुद्गलस्वरूपी शरीर का ही जन्म दिन मनाते हैं, यह निश्चित हुआ। ज्ञानशून्य रक्त–रुधिरादि एवं स्पर्शादि गुणों सहित, जिस शरीर का आत्मा के साथ अंतिम संयोग हो और अशरीरी पद की साधना की जावे, ऐसे शरीर का गौरव, सत्कार, सन्मान, बहुमान करना अर्थात् जन्मदिन मनाना चाहिए।

जन्मदिन के महोत्सव से श्रेष्ठीपुत्र पद्मप्रभ उत्साहित होने के बजाय गंभीर होते जा रहे थे, सो यह उचित ही था। लोग जन्मोत्सव के अर्थ को न जानकर भी उसे मनाते हैं, इससे उन्हें अत्यन्त खेद हो रहा था। ''माता–पिता दोनों जन्म–जयन्ती मनाकर मुझे अशरीरी–मुक्त होने के लिए मानो प्रेरणा दे रहे हैं–उत्साहित कर रहे हैं तो मैं मुक्तिमार्ग को सहर्ष स्वीकार क्यों न करूँ ?'' ऐसे तीव्र वैराग्य के विचार मन में पुनः पुनः उत्पन्न हो रहे थे। ''माँ ने तो मुझे पालने में अध्यात्म के मुक्ति प्रदायक संस्कार दिये हैं, जो कि अमिट हैं।''

**दीक्षा ग्रहण –**

मैंने अनादिकाल से अनेक जीवों को माता–पिता बनाकर उनको रुलाया, कष्ट दिया और उनके माध्यम से मानो भिखारी वृत्ति से परपदार्थों का दास बनता रहा। जन्म–मरणादि दुःखों से संत्रस्त होता रहा। यह प्राप्त दुःख–परम्परा मेरे अज्ञान का ही फल है। इस दुःख की जिम्मेदारी और किसी की नहीं। मेरे अज्ञान को मुझे स्वयमेव छोड़ना होगा; यही सुखी होने का तथा आत्महित का एकमात्र उपाय है। अनंत सिद्धों ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन लिया था।

कोई भी माता–पिता अपने पुत्र को तपोवन में हँसते–हँसते नहीं भेजते; तथापि ये मेरे माता–पिता आदर्श हैं। मेरे वास्तविक तथा शाश्वत हित के इच्छुक हैं। मेरे तपोवन में जाने से इनको तात्कालिक दुःख तो होगा लेकिन.... इसप्रकार विचारपूर्वक निर्णय करके ग्यारहवें वर्ष में पदार्पण करनेवाले पद्मप्रभ ने मुनिपद में पदार्पण करने का विचार माता–पिताजी के सामने दृढ़तापूर्वक रखा।

पुत्र के विचारों को सुनते ही माता–पिता के मन में भयप्रद धक्का लगा। यह बालक इतनी छोटी आयु में ही ऐसा अतिकठोर निर्णय

लेगा; यह उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। अति दीर्घकाल के बाद पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण हुई थी। उसका वियोग सहन करने के लिए उनका मन तैयार नहीं हुआ। माता शान्तला ने अति करुण स्वर में भयभीत होते हुए कहा –

"प्रिय पुत्र ! इस बाल्यावस्था–अल्पवय में किसी भी तीर्थंकर महापुरुष ने संन्यास धारण नहीं किया।"

"माँ ! आप किसकी आयु गिन रही हैं? आयु आत्मा की होती है या मनुष्य पर्याय की? मनुष्य अवस्था की अपेक्षा से विचार किया जाय तो भी आठवर्ष के बाद केवलज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य मनुष्य अवस्था में है–ऐसा शास्त्र का वचन है। ऐसी स्थिति में मैं छोटा हूँ क्या? आत्मसिद्धि एवं किसी भी धार्मिक कार्य के लिए ही तीर्थंकरादि महापुरुषों के आदर्श का अवलोकन किया जाता है, अन्य विषय–कषायादि पोषण के लिए नहीं।"

"आचार्य अनंतवीर्य महामुनीश्वर के द्वारा उस दिन बताया गया भविष्य साकार हो रहा है पुत्र!"

"इसीलिए हे तात् ! मैं कहता हूँ भविष्य का तिरस्कार करना–उसको नकारना पुरुषार्थ नहीं है।"

"पुत्र! तुम्हारे वियोग के विचार से असह्य दुःख हो रहा है, फिर प्रत्यक्ष में वियोग हो जाने पर..........."

"यह दुःख शाश्वत नहीं है माँ ! आप दोनों के उदात्त मन की स्वाभाविक उदारता को मैं जानता हूँ। आप मुझे हँसते–हँसते विदा करें।"

"विरह की वेदना असह्य है, पुत्र !"

''क्षमा करो माँ ! विरक्ति के विशाल मैदान में स्थित भगवान मुझे अपने साथ रहने के लिए पुकार रहे हैं। मैं उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।''

पद्मप्रभ की आंतरिक–ध्वनि में दृढ़ निश्चय था।

''प्रिय पुत्र ! यह घर तुम्हारे जाने से आज ही कांतिविहीन हो जायगा।''

–इसप्रकार गद्गद् कण्ठ से कहती हुई माँ शान्तलादेवी मोहवश बरबस रो पड़ी।

''बस करो माँ ! अब मोह छोड़ दो ! मोह की वशवर्तिनी बनकर अपनी उदात्तता छोड़ना अच्छा नहीं लगता; शोभादायक भी नहीं लगता। आप दोनों ने ही तो मुझे वस्तुस्वरूप का और शुद्धात्मस्वरूप का यथार्थ ज्ञान देकर महान उपकार किया है; उसको मैं जीवनपर्यंत नहीं भूलूँगा।''

''ठीक है पुत्र ! जाओ तुम्हारा कल्याण हो।''

''पूज्य माताजी–पिताजी सादर नमस्कार ! आशीर्वाद प्रदान कीजिए।''

''शुद्धात्मस्वभाव के अनुभव द्वारा कर्मों को जीतकर भव से रहित हो जाना। जबतक सूर्य–चन्द्रमा रहेंगे तबतक विश्व तुम्हारा स्मरण करता रहे।'' – इसप्रकार दोनों ने हृदय के अंतस्थल से अपने हृदय के टुकड़े प्रिय पुत्र पद्मप्रभ को विदा करते समय अन्तिम हार्दिक आशीर्वाद दिया।

उस वैराग्यसम्पन्न बालक ने वहाँ से दिगम्बर दीक्षा लेने हेतु प्रस्थान किया। सेठ गुणकीर्ति और माता शान्तलादेवी दोनों न जाने

कितने समय तक वहीं अचल–अबोल खड़े हुए पद्मप्रभ की पीठ को अश्रुपूरित नेत्रों से देखते रहे।

सुकोमल शरीरधारी वैश्यपुत्र ने अभी ग्यारह वर्ष भी पूरे नहीं किये थे; परन्तु बाल्यावस्था में ही आत्मा की अंतर्ध्वनि सुनकर संसारोत्पादक तीन शल्यों से रहित होकर घर छोड़कर वह चल दिया और माता–पिता के करुण क्रंदन से भी विचलित न हुआ वह दीक्षार्थी अनेक ग्राम, नगर, वन–उपवनों को लांघकर भ्रमण करता हुआ दक्षिण दिशा के नीलगिरि–पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ विराजमान मुनिराज[1] से यथाजातरूप दिगम्बर जैन साधु की दीक्षा धारण की।

दीक्षा के बाद गुरु ने उनके घर के पद्मप्रभ नाम को ही थोड़ा बदलकर उन्हें 'पद्मनंदि' यह नाम दिया। उस दिन से ही पद्मप्रभ पद्मनंदि नाम से प्रसिद्ध हुए।

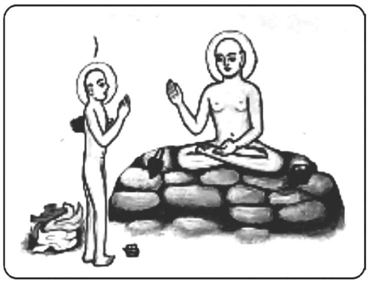

बाल्यावस्था में यथाजातरूप मुनिधर्म धारण करके पद्मनंदि मुनि महाराज अपने गुरु के आदेशानुसार कुछ मुनिजनों के साथ सर्वत्र विहार करते थे। अनेक राजा, महाराजा,

1. ई. सं. पूर्व 97 दीक्षादायक गुरू का कोई निश्चित नाम नहीं मिलता। श्री जिनचन्द्रस्वामी का नाम भी लिया जाता है। बोधपाहुड़ गाथा 61 में वे स्वयं को भद्रबाहु का शिष्य लिखते हैं।

इसीप्रकार नन्दिसंघ की पट्टावलि में माघनन्दि, जिनचन्द्र और कुंदकुंद का क्रमश: उल्लेख आता है। इस यह फलित होता है कि माघनन्दि के पश्चात् जिनचन्द्र, जिनचन्द्र के पश्चात् कुंदकुंद को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ होगा। अत: कुंदकुंद के गुरु का नाम 'जिनचन्द्र' होना चाहिए।

– तीर्थंकर महावीर और आचार्य परम्परा, भाग–2, पृष्ठ–103

राजकुमार, राजश्रेष्ठी, श्रावक–श्राविका और वृद्ध मुनि महाराज भी उनका सदा सहृदय सन्मान करते थे। परन्तु पद्मनंदि मुनिराज का किसी पर राग–द्वेष नहीं था। वे तो समदर्शी महाश्रमण बन चुके थे।

अब वे सतत आत्मा की साधना–आराधना में वर्तते हुए वन–जंगल में ही वास करते हैं। साथ ही अहिंसादि पाँच महाव्रत, ईर्यादि पाँच समिति, पंचेन्द्रियनिग्रह, केशलोंच, षडावश्यक क्रिया, नग्नता, अस्नान, भूमिशयन, अदन्तधावन, खड़े होकर आहार लेना, दिन में एकबार भोजन इन अट्ठाईस मूलगुणों का निर्दोष पालन करते थे। ये 28 मूलगुण मुनीश्वरों के जीवन में अनिवार्यरूप से होते ही हैं।

दीक्षा ग्रहण के बाद अखण्डरूप से 33 वर्षों तक निजस्वभाव की साधना में निरत मुनिराज पद्मनंदि ने स्वानुभव प्रत्यक्ष से उत्पन्न सच्चे सुख को भोगते हुए दक्षिण और उत्तर भारत में मंगल विहार किया। संघस्थ साधुजनों को और वनजंगल में दर्शन निमित्त आये हुए श्रावक–श्राविकाओं को भी यथार्थ तत्त्वोपदेश तथा धर्मोपदेश भी देते थे। उनका सुमधुर, प्रभावी, भवतापनाशक तथा यथार्थ उपदेश सुनकर और निर्मल, निराबाध, परिशुद्ध आचरण प्रत्यक्ष देखकर सम्पूर्ण भारतदेश का श्रमण समूह भी उनसे विशेष प्रभावित होता था। और उनकी मन ही मन में हार्दिक प्रशंसा करता रहता था।

उठे तो आत्मा, बैठे तो आत्मा और जिनके हृदय का परिस्पंदन भी आत्मामय हो गया था, उस श्रमण–कुलतिलक मुनिपुंगव को देखकर वेषधारी साधुओं के हृदय में भय से कम्पन होता था। और अपने इस भय–कम्प को वे सामान्यजनों से छिपा भी नहीं पाते थे। इस तरह वे पद्मनंदिमुनिराज परम वीतराग सत्यधर्म की साकार मूर्ति ही बन गये थे। श्रमण परम्परा के सर्वश्रेष्ठ साधक समता परिणाम के

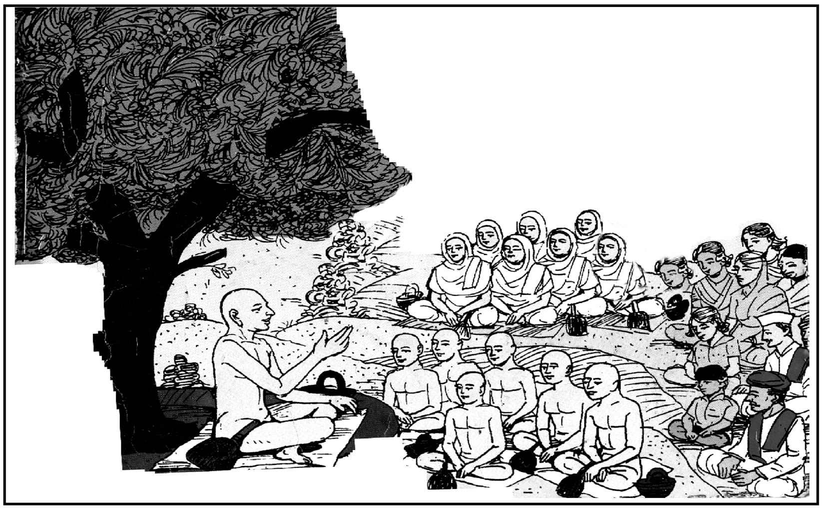

कारण सबके मन में समान रीति से श्लाघ्य (प्रशंसनीय) हो गये थे। ऐसे मुनिपुंगव पद्मनंदि को मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका चतुःसंघ ने ई.स.पूर्व 64 में आचार्य पद पर सोत्साह प्रतिष्ठित किया और अपने इस कार्य से चतुःसंघ स्वयं भी सन्मानित हो गया। उस समय आचार्य पद्मनंदि महाराज की आयु 44 वर्ष की थी।

**तपोभूमि पोन्नूर –**

विभिन्न प्रान्तों में विहार करते हुए पात्र जीवों को उपदेश देते हुए आचार्य कुन्दकुन्द देव पोन्नूर गाँव के पास पर्वत पर पहुँचे। चातुर्मास आरम्भ होनेवाला था अत: उन्होंने पोन्नूर पर्वत को तपोभूमि के रूप में चुनकर मुनिसंघ को आस-पास विहार करने के लिए आदेश दिया। स्वयं उसी पर्वत की एक अकृत्रिम गुफा में तपस्या करने के लिए बैठ गये। पक्षोपवास, मासोपवास आदि व्रताचरण करते हुए इन्द्रियों द्वारा बाह्य विषयों में प्रवर्तमान ज्ञान को अपने में समेटकर वे विचार करते थे–

''परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न होनेवाली आत्मा की पर्यायें-अवस्थाएँ मेरी नहीं हैं, वे विभावरूप नैमित्तिक भाव हैं। उनका मैं

कर्ता भी नहीं हूँ। मोह–राग–द्वेषादि सर्व भाव विभावरूप हैं। मेरा स्वभाव मात्र ज्ञाता–दृष्टा है। परद्रव्य में अहंकार–ममकारभाव ये दुःखदायक भ्रान्ति है। भ्रान्ति स्वभावरूप तथा सुखदायक कैसे हो सकती है? मैं तो सच्चिदानंदस्वरूपी हूँ। मैं अपने सुखदायक ज्ञाता–दृष्टा स्वभाव का कर्ता–भोक्ता बनकर स्वरूप में रमण करूँ।''

इसप्रकार भेदज्ञान के बल से योगीवर्य अप्रमत दशा में पहुँचते थे। वहाँ शुद्धात्मा के रस का आस्वादन करके आनंदित हो जाते थे। फिर प्रमत्त अवस्था में आते थे। पुनः पुनः शुद्धात्मा के आश्रयरूप तीव्र पुरुषार्थ करके अप्रमत्त अवस्था में जाते थे। इसप्रकार अंतरंग में तीव्र पुरुषार्थ की धारा अखण्ड चलती थी, बाह्य में जैसा पद्मासन लगाकर बैठे रहते थे, उसमें कुछ अन्तर नहीं पड़ता था। वे दर्शकों को पाषाण मूर्ति के समान ही अचल दिखाई देते थे।

जब तीव्र पुरुषार्थ मंद पड़ने पर वे शुद्धोपयोग से शुभोपयोग में आते थे तो सोचते थे – ''अहो आश्चर्य ! इस जड़ शरीर का संयोग अभी भी है?''

कुन्दकुन्दाचार्य ध्यानावस्था–आत्मगुफा से बाहर आकर और पाषाण गुफा से भी बाहर आकर जब कभी पर्वत तथा सुदूर प्रदेश पर सहज निर्विकार दृष्टिपात करते थे तब स्मृति पटल पर मुनिसंघ का चित्र अंकित/प्रतिबिंबित होता था। योग्य समय में जब शरीर के लिए आवश्यक और ध्यान में निमित्तभूत आहार के लिए निकलने का विकल्प उठता था। तब पर्वत पर से नीचे उतरकर चर्या के लिए पोन्नूर गाँव में गमन करते थे। आहार करते ही कड़ी धूप में ही फिर पर्वत पर पहुँच जाते थे।

''आहार के लिए कल फिर उतरना ही पड़ेगा, अतः पर्वत पर

न जाकर बीच में ही कहीं ध्यान के लिए बैठें'' ऐसे विचार मन में कभी भी नहीं आते थे। ''आज आहार लिया है, अब फिर आहार लिए बिना ही निराहारी स्वभाव की साधना करना है'' ऐसे उग्र पुरुषार्थी चिंतन की कांति उनके मुख–मण्डल पर झलकती थी। धन्य! धन्य! मुनिजीवन।

एक दिन सहज ही पश्चिम दिशा में स्थित गुफा की ओर गमन किया। जिसका प्रवेश–द्वार छोटा है और जिसके अन्दर एक ही व्यक्ति पद्मासन लगाकर बैठ सकता है ऐसी गुफा में जाकर ध्यान में बैठ गये। तीव्र पुरुषार्थ करके ध्यान द्वारा लौकिक विश्व से दूर–अतिदूर अलौकिक विश्व में पहुँच गये। आत्मानंद सागर में गहरे डूब गये। सिद्धों के समान स्वशुद्धात्मा का सहज अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद प्राप्त किया। साध्य–साधक भाव का अभाव होने से द्वैत का अभाव करके अद्वैत बन गये, उसमें ही मग्न हो गये। ऐसे काल में पूर्वबद्ध पापकर्मों का स्वयमेव नाश हो रहा था। अनिच्छापूर्वक ही स्वयमेव पुण्य का संचय हो रहा था। धर्म अर्थात् वीतरागता तो बढ़ ही रही थी। ज्ञानज्योति का प्रकाश भी फैलता गया।

इसप्रकार सम्यक् तपानुष्ठान के सामर्थ्य से योगीश्वर कुन्दकुन्दाचार्य को अनेकानेक ऋद्धियों की प्राप्ति हो गई। परन्तु उन्हें सहज प्राप्त ऋद्धियों का भी मोह नहीं था। वीतरागी दिगम्बर मुनि महाराज का स्वरूप ही ऐसा होता है।

चातुर्मास समाप्त होने पर मुनिसंघ सहज ही आचार्यश्री के दर्शनार्थ आया। गुरुदर्शन के समय संघस्थ मुनिराजों के ज्ञान में आ ही गया कि अपने गुरु को अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। पहले से भी संघस्थ मुनिराजों में गुरु के प्रति भक्ति भाव बढ़ना स्वाभाविक ही

था। वे सोचने लगे– इनकी योगशक्ति, प्रतिभा और पवित्रता के सामने कौन नतमस्तक नहीं होगा? मलयदेश के राजा शिवमृगेश ने इस महापुरुष का एक ही बार दर्शन करके अपने परम्परागत कुलधर्म का त्याग कर जैनधर्म को स्वीकार किया ही है।

इसी बीच में–''राजाधिराज, मलयदेशवल्लभ, पल्लवकुल गगनचन्द्र, कुन्दकुन्दपाद पद्मोपजीवी, सत्यप्रिय श्री शिवस्कन्धवर्मा महाराज **पराकु–जय पराकु।**''

ऐसी आवाज नीलगिरी पर्वत के बीहड़ वन में गूँज उठी और पोन्नूर पर्वत–शिखर से टकराने पर प्रतिध्वनित हुई। यह आवाज शिवस्कंधवर्मा राजा के आगमन की सूचना दे रही थी।

प्रभातकाल में आचार्यदेव के सान्निध्य में रहनेवाले महामुनिराज दशभक्ति का पाठ कर रहे थे–

**वीसं तु जिणवरिंदा, अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।**
**सम्मेदे गिरिसिहरे, णिव्वाणगया णमो तेसिं।।**

इस गाथा का चौथा चरण णिव्वाणगया णमो तेसिं। उच्चारण करते–करते मुनिसंघ के मनःचक्षु के सामने सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त बीस तीर्थंकरों का दिव्य–भव्यचरित्र साकार हो जाता था और तत्काल ही सर्व मुनिराज नतमस्तक होते थे। सिद्धक्षेत्र का वह विशिष्ट, शांत, पवित्र प्रदेश उनके मन में रेखांकित–सा हो जाता था।

उसी समय हेमग्राम से आये हुए शिवस्कन्धवर्मा अपरनाम शिवकुमार राजा ने अपने परिवार के साथ आकर आचार्य के चरण कमलों की वंदना की। आचार्य श्री के सान्निध्य में वह राजा पूर्वांचल से उदित बाल–भास्कर के समान मनोहर होते हुए भी छोटा लगता

था। आचार्यश्री ने पहले अपने मुनिसंघ पर और बाद में राजा पर अपनी कृपादृष्टि डाली। मानों सबको मौन आशीर्वाद ही दिया हो। तदनंतर सामने दूर तक शून्यदृष्टि से देखते रहे।

आज आचार्य का विहार होगा यह बात जानते हुए भी स्मरण आते ही शिवकुमार के हृदय को झटका–सा लगा। कुछ बोले नहीं, उस राजा के पास बोलने लायक था भी क्या ? क्योंकि वह जानते ही थे कि चातुर्मास समाप्त होने पर संघ का विहार क्रमप्राप्त था। तथापि रागवश राजा सोचने लगे– ''इस मलयदेश से धर्म ही के निकल जाने पर यहाँ क्या शेष रहेगा? आचार्य का ससंघ विहार होना अर्थात् धर्म का निर्गमन ही तो है। धर्मात्मा के जाने पर यहाँ क्या शेष रहेगा? धन–वैभव, राज्य–ऐश्वर्य सब, धर्म के अभाव में निरर्थक है। व्यर्थ है। साधु अर्थात् साक्षात् धर्ममूर्ति से धरा सुशोभित होती है।''

अश्रुपूरित नयनों से राजा ने आचार्य श्री की ओर निहारा। आचार्य श्री ने भी धर्मवात्सल्य मुद्रा से राजा को देखा। उसी समय मोह परिणामों को दूर करने में समर्थ ऐसे भावगर्भित वचन आचार्य के मुख से निकले–

**एगो में सस्सदो अप्पा, णाणदंसण लक्खणो।**
**सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।**

''ज्ञान–दर्शन लक्षणस्वरूप शाश्वत एक आत्मा ही मैं हूँ, मेरा है और शेष सभी भाव बाह्य हैं, संयोगस्वरूप पर हैं।''

''अहो ! सुखद आश्चर्य ! मेरे मन में उत्पन्न होने वाले ये पुण्यमय शुभभाव भी पर ही हैं। तब परद्रव्यों का और उनकी अवस्थाओं का तो मेरे साथ सम्बन्ध कैसा ? और मेरे हित के लिए उनका मूल्य भी क्या ?''

राजा शिवस्कन्धवर्मा वर्षायोग में अनेक बार वन में आचार्यदेव के सान्निध्य में आये थे। उनसे धर्मलाभ प्राप्त किया था। उनके प्रत्यक्ष जीवन, उपदेशित वीतराग धर्म, वस्तुतत्त्वपरक कथन आदि से वे प्रभावित थे।

राजा के मानस पटल पर उपर्युक्त गाथा का अमिट प्रभाव था। इसलिये णमोकर महामंत्र के समान वे इस गाथा के भाव पर भी बहुधा मनन-चिन्तन किया करते थे।

यह गाथा उनके हृदय में प्रवेश करके सतत अपूर्व-अद्भुत प्रेरणा दे रही थी। अंतरंग की गहराई से कुछ नया परिवर्तन भी बाहर आना चाहता था। उसके प्रगट होते ही, राजा के बाह्यांगों में भी सहजरूप से हलन-चलन प्रारम्भ हो गया। गाथा के एक-एक पद के उच्चारण के साथ शरीर से भी एक-एक वस्त्राभूषण निकलना प्रारंभ हो गया।

सूर्य के समान चमकने वाले मस्तक का मनोहर राजमुकुट मस्तक से उतर गया। सर्वांग को आवृत्त करनेवाला जरतारी शोभादायक धवल दुकूल दूर हो गया। गले की शोभा बढ़ानेवाले नवरत्न हार ने भी अपना स्थान त्याग दिया। वज्र की अंगूठी और भुजकीर्ति ढीले होकर गिर पड़े।

आज राजा ने न जाने किस शुभ मुहूर्त में पर्वतारोहण किया था। मानों पर्वत पर चरण रखते ही मोक्षमार्गारोहण भी प्रारम्भ हो गया। उपस्थित नर-नारी राजा के इस त्यागमय जीवन का वैराग्यमय दृश्य आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे।

राजा शिवस्कन्धवर्मा का दीक्षा ग्रहण और मुनिसंघ का तमिलनाड से विहार करने का समाचार विद्युत वेग से आस-पास के गांवों में

फैल गया। राजा शिवस्कन्धवर्मा के प्रेमाग्रह से और कुछ दिन मुनिसंघ तमिलनाड में रह सकता है, ऐसा समझने वाले लोगों को राजा का दीक्षा ग्रहण करना निराशा का कारण बन गया। मुनिसंघ को रुकने के लिए आग्रह करनेवाला राजा ही परम दिगम्बर मुनि बनकर उनके पीछे छाया के समान चल दिया तो संघ को कौन रोक सकता है ?

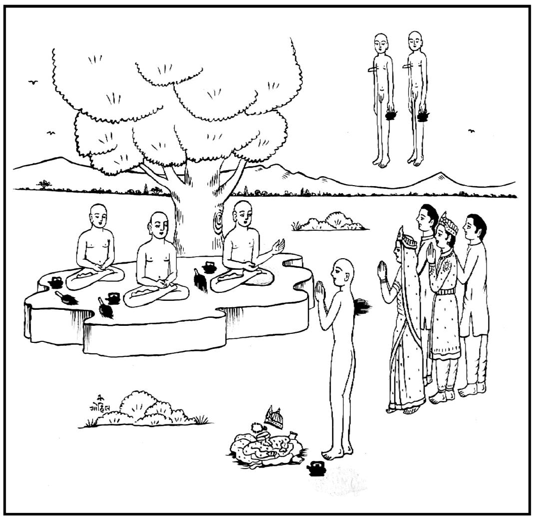

इसी कारण राजकुमार, श्रेष्ठीवर्ग और अन्य प्रतिष्ठित महानुभावों ने मुनिसंघ को रुकने की प्रार्थना करने हेतु पहाड़ पर चढ़ना प्रारंभ किया। संघस्थ मुनीश्वरों की सहज दृष्टि पहाड़ चढ़नेवाले जनसमूह की ओर गयी और उनके मन में विचार आया-जैसे राजा शिवस्कन्धवर्मा ने अकस्मात् दीक्षा लेकर सबको सुखद आश्चर्य में डाल दिया, वैसे ही आश्चर्यकारक अब नया क्या होनेवाला है ?''

कुछ क्षण के बाद वह जन-समुदाय मुनिसंघ के निकट आ गया।

आचार्यवर्य कभी विश्व के स्वरूप पर चिन्तन करते, कभी भावनालोक में विचरते तो कभी शून्य व अनिमेष दृष्टि से दूर पर्यंत देर तक देखते रहते। उनका मन सुपरिचित क्षेत्र से अत्यंत दूर साक्षात् केवली दर्शन के लिए उत्कंठित हो रहा था।

"पर छठवें गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत साधु औदारिक शरीर के साथ पंचमकाल में विदेहक्षेत्र में कैसे जा सकेगा ?" ऐसे विचार के तत्काल बाद ही दूसरा विचार यह भी आता था कि "कालद्रव्य तो परमाणु मात्र है, जड़ है। अज्ञानी और पुरुषार्थहीन लोग ही कालादि परद्रव्य के ऊपर अपनी पुरुषार्थहीनता का आरोप लगाते हैं।" ऐसा विचार योग्य नहीं।

इसी बीच जनसमुदाय ने आकर मुनिसंघ की भक्तिभाव से वंदना करके प्रार्थना की मुद्रा में आशागर्भित दृष्टि से आचार्यदेव के मुखकमल को निहारा। तब विशिष्ट चिन्तन में निमग्न आचार्य महाराज ने ध्यान टूटने पर प्रश्नभरी दृष्टि से श्रावक समूह और मुनिसंघ की ओर दृष्टि डाली। आचार्यश्री के भाव को समझकर चिन्तामग्न राजकुमार ने अपने स्थान पर खड़े होकर नम्रता से करबद्ध होकर निवेदन किया–

"भगवन् ! दिगम्बर महासन्तों को कुछ दिन यहीं रहने के लिए रोकने का अनधिकारी यह श्रावकसमूह आपके प्रति भक्ति तथा श्रद्धा के कारण योग्यायोग्य का विचार न करते हुए वीतरागता को राग से प्राप्त करने का आग्रह कर रहा है। आपके तथा धर्म के ऊपर हमारी वास्तविक श्रद्धा है। हमारे लिए भी यही श्रेयस्कर है कि हम पिताश्री (राजा शिवस्कन्धवर्मा) के मार्ग का अनुसरण करें। साधु (आचार्य कुन्दकुन्द) पर समर्पित उनका मन साधुत्व पर भी समर्पित हुआ इसलिए वे स्वयं साधु बन गये। परन्तु उन जैसा उग्र पुरुषार्थ करने का सामर्थ्य हम अपने में नहीं पा रहे हैं। अतः आपके चरणकमलों की धूल से यह पर्वत–प्रदेश और कुछ काल तक पवित्र होता रहे और हमारी पात्रता को प्रेरित करता रहे – यह नम्र निवेदन है। आपकी कृपा होगी – ऐसी आशा है।"

**विदेहक्षेत्र गमन –**

श्रमण संघ और श्रावक समूह इस नम्र निवेदन को सुन रहा था, परन्तु आचार्यश्री की दृष्टि पूर्व दिशा की ओर केन्द्रित थी। राजकुमार का निवेदन समाप्त होते ही सभी की दृष्टि आचार्य की ओर आकर्षित हुई। दूसरे ही क्षण आचार्य जिस स्थान पर दृष्टि लगाये बैठे थे, सभी लोगों ने उसी ओर देखा तो आकाश में दूर कुछ प्रकाश–सा दिखाई दिया। कोतूहल/जिज्ञासा से उसी ओर अपलक दृष्टि से देखते रहने पर तेजोमय मेघ के समान कुछ अद्भुत–सा दृश्य दिखाई दिया।

क्या यह सूर्य है ? नहीं, नहीं। सूर्य तो अस्ताचल की ओर ढ़ल रहा है। तो क्या यह नक्षत्र मण्डल है ? नहीं, अहो आश्चर्य ! एक से दो हो गये, ऐसा लग रहा है कि वे दोनों प्रकाशपुंज इधर ही आ रहे हैं। जमीन पर उतर रहे हैं। अहो मानव आकृतियाँ हैं, नहीं नहीं महामुनि युगल हैं। अहो ! ये तो चारणऋद्धिधारी मुनिराज युगल हैं।

श्रमण–कुलतिलक आचार्यश्री के दर्शनार्थ आये होंगे...अहो ! चारण ऋद्धिधारी मुनिराज भी इस मानव–महर्षि की वंदना कर रहे हैं। अहो ! इनके तप की महिमा कितनी अपार है।

''भगवन् ! विश्ववन्द्य ! वन्दे, वन्दे, वन्दे।''

कुछ काल मौन धारण कर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने निज मति को अन्तर्लीन किया। ''विश्ववन्द्य, भगवन् आदि मेरे लिए प्रयुक्त विशेषण मेरे योग्य नहीं हैं। ये सम्बोधनकर्त्ता की महानता को बताते हैं।'' इसप्रकार विचार करके आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने चारण–मुनियों की प्रतिवन्दना की।

चारण–मुनियों ने तत्काल उनको रोककर कहा–

"भगवन् ! यह क्या ?"

"कुछ नहीं, यही योग्य है।"

"इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विदेहक्षेत्रस्थ श्री सीमन्धर तीर्थंकर देव के समवशरण में गणधरदेव की उपस्थिति में आपके अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की विशिष्ट चर्चा सुनकर ही हम आपके दर्शनार्थ आये हैं।" – पूज्यपाद गणधरदेव की क्या आज्ञा है ?

"परम स्वतन्त्र वीतराग जैनधर्म में दीक्षित वीतरागी, दिगम्बर महामुनीश्वरों के बीच बोध्य–बोधक भाव को छोड़कर अन्य किसी सम्बन्ध को अवकाश ही कहाँ है? आप जैसों के लिए उनकी आज्ञा की क्या आवश्यकता है ?"

चारण मुनिद्वय कुछ समय पर्यंत मौन रहे, फिर नयन निमीलित करके अल्पसमय तक विचार किया। फिर मुनिपुंगव की भावना को जानकर गंभीरतापूर्वक निर्णयात्मक रीति से कर्णमधुर वाणी में बोले–

"क्या आपको विहरमान तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान के साक्षात् दर्शन करने की अभिलाषा है ?"

"महाविदेह क्षेत्र में जाने की अभिलाषा तो तीव्र है ही किन्तु.....

"किन्तु–परन्तु क्यों ? आपको चारणऋद्धि प्राप्त हुई है। ऋद्धि के अभाव में भी आप जैसे भगवत्स्वरूप के लिए कौन–सा कार्य असंभव है ?"

आचार्य कुन्दकुन्द देव को प्राप्त चारणऋद्धि का संतोषकारक समाचार इसके पहले किसी को भी विदित नहीं था। चारण मुनियों के मुखकमल से विनिर्गत इस विषय को सुनकर श्रावक समूह और श्रमण–संघ को अत्यानंद हुआ। सभी सोचने लगे–

"इस चातुर्मास में आत्मा की उग्र साधना के फलस्वरूप यह ऋद्धि प्राप्त हुई होगी। असाधारण आत्माराधना का फल ऐसा अद्भुत ही होता है। इसमें अज्ञानियों को ही आश्चर्य होता है, ज्ञानियों को नहीं। परमोपकारी आचार्य परमेष्ठी ने अपने तप के प्रभाव से पंचमकाल को चतुर्थकाल सा बना दिया। इसप्रकार के साधु-संतों से सहित यह भारत-भूमि परम पुनीत है, धन्य है।"

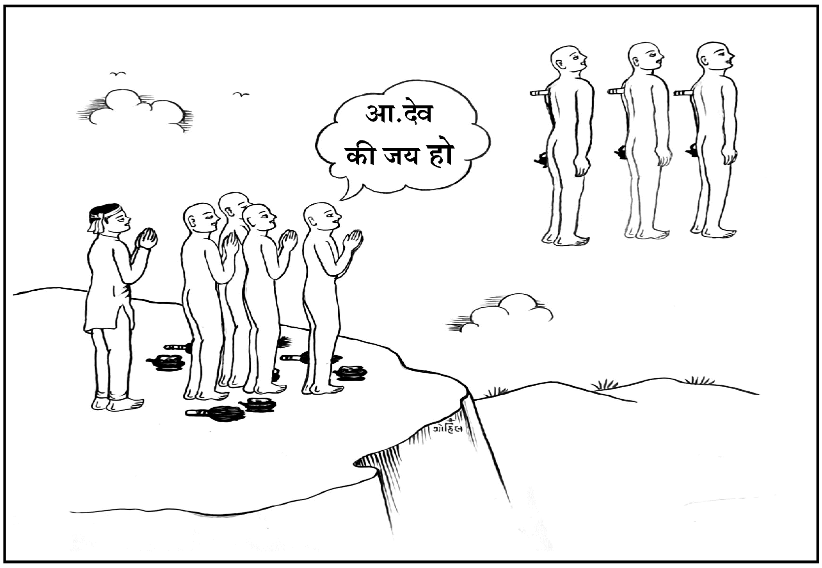


देखते-देखते ही रत्न की प्रभा के समान उन तीनों ही महामुनीश्वरों के शरीर से चारों ओर प्रभा-वलय फैल गया। मानों ऊषाकालीन लोकव्यापी बालभास्कर के सुखद, सुन्दर और स्वर्ण-अरुण किरणों से वह पर्वत कंचनमय बन गया हो। इसी ऐतिहासिक आश्चर्यकारी घटना से इस पर्वत को पौन्नूरमलै-पौन्नूरबेट्ट[1] यह नाम मिला होगा।

1. कन्नड तथा तमिल भाषा में **पौन्न शब्द का अर्थ सोना** तथा तमिल भाषा में **मलै शब्द का अर्थ पर्वत** और कन्नड भाषा में **बेट्ट शब्द का अर्थ पर्वत** होता है।

वह आभा–मण्डल उसी रूप में आकाश की ओर बढ़ा और बढ़ते–बढ़ते आगे–आगे ही चलता रहा। वह प्रभा मण्डल अति दूर गया। प्रथम तो तीन ही ऋषीश्वर तीन कांतिमय रेखा समान प्रतीत हो रहे थे, बाद में दो, तदनन्तर एक ही प्रकाश–पुंजरूप दृष्टिगोचर हो रहे थे। अब तो वह प्रकाशमात्र नक्षत्राकार ही लगने लगा।

अन्त में चक्षुरिन्द्रिय के सामर्थ्य के अभाव से अनंत आकाश में आकार रहित निराकार बनकर अदृश्य हो गया। इस तरह भूमिगोचरी मानवों को महापुण्योदय से एक अंतर्मुहुर्त पर्यंत स्वर्गीय सौन्दर्य के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस आश्चर्यकारी, अद्‌भुत और अपूर्व दृश्य को मूक विस्मय से देखनेवाले श्रावकसमूह तथा साधुसंघ ने स्वयमेव सोत्साह आचार्य कुन्दकुन्द के नाम का तीन बार उच्च स्वरों में जय–जयकार किया।

इस जयघोष की ध्वनि गिरि कन्दराओं में न समाती हुई अनंत आकाश में गुंजायमान हो उठी।

जयघोष ध्वनि की अनुगूंज के साथ ही अत्यन्त कर्णप्रिय, ललित, गंभीर व स्पष्ट ध्वनितरंग सायंकालीन शीतल हवा में फैल गयी। यह ध्वनि पूर्व–पश्चिम, दक्षिण–उत्तर दशों दिशाओं में समान रीति से व्याप्त हो गयी। दक्षिणोत्तर ध्रुवप्रदेश भी इस ध्वनि से अपरिचित नहीं रहे। इस मंद, मधुर तथा स्पष्ट ध्वनिप्रवाह को सुननेवालों के हृदयकपाट सहज खुल गए। अपरिचित मंजुल–मनमोहक ध्वनि सुनकर सभी स्वयमेव मंत्रमुग्ध से हो गए। इस अनुगूंज ने सहज ही निम्नांकित श्लोकरूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

**मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।**
**मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।**

– इसका मूल प्राकृत पद इसप्रकार है।

मंगलं भगवदो वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाई, जेण्हधम्मोत्थु मंगलं।।

इसप्रकार यह ज्ञानगर्भित भक्तिपरक श्लोक दिगन्त में फैल गया। पोन्नूर पर्वत पर विराजमान मुनिसंघ के मुखकमलों से भी यह श्लोक पुनः पुनः मुखरित होने लगा। जो कि आज भी भव्यों का कंठहार बना हुआ है और भविष्य में बना रहेगा।

ऐसा भी आता है कि उन्हें दो देव आकर विदेहक्षेत्र ले गये थे, यह प्रसंग जैनधर्म की कहानियाँ भाग–13 में इसप्रकार मुद्रित है–

''अरे ! भरतक्षेत्र में तो सर्वज्ञ परमात्मा के दर्शन भी नहीं ! विदेह क्षेत्र में तो श्री सीमंधरादि परमात्मा साक्षात् विराज रहे हैं, इसप्रकार सीमंधरादि परमात्माओं को स्मरण करते हुए वे 'पौन्नूर' के समीप बैठे-बैठे सीमंधर परमात्मा के समवसरण को स्मरण कर रहे थे कि ''वहाँ सर्वज्ञदेव की दिव्यवाणी मूसलाधार बरसती होगी, गणधर विराजते होंगे, अनेकों मुनिराज आत्मध्यान करके केवलज्ञान पाते होंगे। अहा ! कैसे होंगे वे दृश्य ?

इसप्रकार यहाँ भरतक्षेत्र में कुन्दकुन्द मुनिराज सीमंधर प्रभु को याद कर रहे थे, वहाँ भगवान के समवसरण में इस बात की खबर पड़ी। वहाँ से दो देव भक्तिपूर्वक कुन्दकुन्द स्वामी के पास आये और उनके साथ आकाशमार्ग से विचरण करते हुए कुन्दकुन्द स्वामी सीमंधर परमात्मा के दर्शनों के लिये विदेह क्षेत्र रवाना हुए।

अहा ! भरतक्षेत्र के मुनिराज विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर परमात्मा के दर्शन करने आकाश मार्ग से चले..... भरतक्षेत्र के मुनिराज देह सहित विदेह की यात्रा के लिए चले... कैसा होगा वह अद्भुत् प्रसंग!

अहा ! ये कुन्दकुन्द मुनिराज भगवान के दर्शनों के लिये आकाश मार्ग से जा रहे हैं, कैसा होगा वह दृश्य ? और कैसे होंगे उन मुनिराज के अन्तरंग भाव ? केवलज्ञान के साधक मुनिराज केवलज्ञान को साक्षात् निहारने जा रहे हैं। भरतक्षेत्र के तीर्थपति विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर की वाणी सुनने जा रहे हैं। दक्षिण देश में से पूर्व विदेह की ओर जाते-जाते बीच में सम्मेदशिखर तीर्थ भी मार्ग में आया होगा...... उसे वन्दन करते हुए ऋद्धिबल से पर्वत को लांघकर थोड़ी ही देर में शाश्वत् तीर्थ मेरु की भक्ति भाव से वन्दना की होगी.... रत्नमय शाश्वत जिनबिम्बों की वीतरागता देख-देखकर वीतराग भाव की उर्मियाँ उनमें जगी होंगी। इसप्रकार मार्ग में अनेक तीर्थों की वन्दना करते हुए उन्होंने थोड़ी ही देर में विदेहक्षेत्र की भूमि में प्रवेश किया।

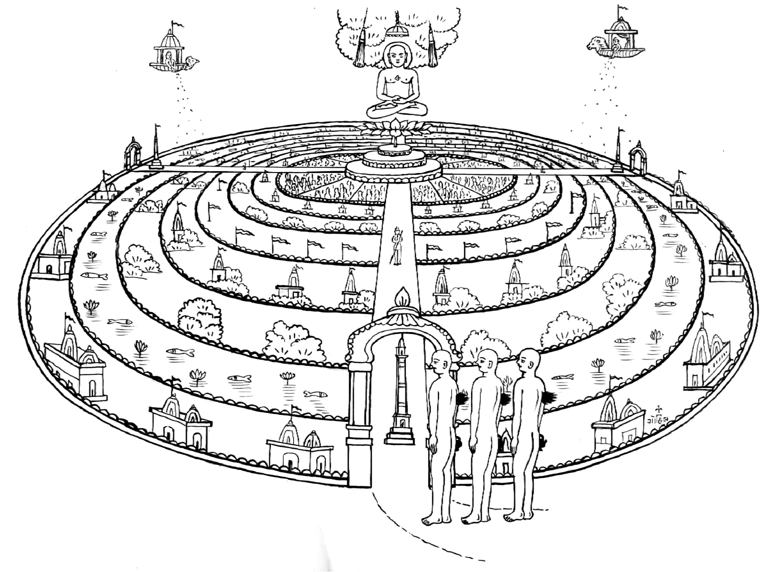

विदेहक्षेत्र के मनुष्यों का शरीर 500 धनुष का और आचार्य कुन्दकुन्द छह हाथ प्रमाण – इस कारण वहाँ के चक्रवर्ती आचार्य

कुन्दकुन्द को अपनी हथेली पर रखकर विचार करने लगे कि ये मनुष्याकार अतिसूक्ष्म अवगाहना का धारी यह कौन-सा प्राणी है, मैंने पूरे छहों खण्डों में विजय के समय भी ऐसा कोई प्राणी नहीं देखा, अत: प्रभु सीमंधर परमात्मा से अपने चित्त में उपजी शंका का समाधान पाने की जिज्ञासा से पूछा – 'प्रभो ! यह मनुष्य की तरह लगने वाला प्राणी कौन है ?'

तब सीमंधर परमात्मा की दिव्यध्वनि में आया कि 'ये भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य कुन्दकुन्द हैं। तुमने पूर्व जो धर्मवृद्धि के सम्बन्ध में पूछा था, वे यही हैं।'' इतना सुनते ही चक्रवर्ती ने अति आदरभाव सहित उनके योग्य उच्चासन पर उन्हें विराजमान किया और परमभक्ति से नमस्कार कर अपनी भक्ति प्रदर्शित करते हुए उन्हें ऐलाचार्य नाम से सम्बोधित किया।

उनका जन्मस्थान कौण्डकुन्दपुर के अन्वर्थरूप से कौण्ड कुन्द और उच्चारण सुलभता के कारण कुन्दकुन्दाचार्य अति प्रसिद्ध हुआ। इसप्रकार ऐलाचार्य सहित, दीक्षा के समय पद्मनंदी, गृद्धपिच्छी मिलने पर गृद्धपिच्छाचार्य और शास्त्र रचना करते-करते गर्दन वक्र हो जाने के कारण वक्रग्रीवाचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य ये उनके पाँच नाम प्रसिद्ध हैं, जो उन्हें समय-समय पर मिले थे।''[1]

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने पंचमकाल में तीर्थंकर भगवान का साक्षात् दर्शन किया। पूर्वज्ञात यथार्थ आगमज्ञान दिव्यध्वनि सुनकर

1. नन्दिसंघ से संबंधित विजयनगर के प्राचीन शिलालेख में (अनुमानित काल ई. सं. 1386) उपर्युक्त पाँचों नाम कहे गये हैं। नन्दिसंघ की पट्टावली में भी ये उपर्युक्त पाँचों ही नाम निर्दिष्ट हैं। पंचास्तिकाय की टीका में जयसेनाचार्य ने भी पद्मनन्दि आदि पाँचों ही नामों का उल्लेख किया है।

स्पष्ट तथा विशदता को प्राप्त हुआ एवं आत्मानुभूति प्रगाढ़ता को प्राप्त हुई। एवं जीवोद्धारक अनादिनिधन परम सत्य तत्त्व लोगों को समझाया; लिपिबद्ध भी किया। यह शास्त्र लेखन का कार्य वस्तुतत्त्व का निर्णय करके आत्महित के मार्ग में संलग्न होने के अभिलाषी भव्यजीवों के लिए एकमेव महान उपकारी उपाय है। इसलिए भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद आचार्य कुन्दकुन्ददेव को प्रथम स्थान प्राप्त होना उचित ही है।

आचार्यदेव का चारण मुनि युगल के साथ विदेहक्षेत्र की ओर गमन हो जाने के बाद भक्त समुदाय उनके प्रत्यागमन की निरन्तर प्रतीक्षा कर रहा था। आचार्यदेव का शुभागमन कब होगा। ऐसी उत्कंठा सबके मनमंदिर में अखण्ड रूप से उछल रही थी। और दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। जिज्ञासा दिन–दूनी रात चौगुनी होती जा रही थी। तथापि गुरुदेव के आगमन विषयक कुछ भी संकेत प्राप्त नहीं हो रहा था। आचार्यश्री के विरह का एक–एक क्षण एक–एक युग के समान श्रावक समूह को खटकता था। मुनिसंघ को गुरुदर्शन की अभिलाषा थी ही। ऐसी मनःस्थिति में एक–एक करके सात दिन बीत गए।

आठवें दिन सबने सुबह से सायंकाल पर्यंत आकाश की ओर से अपनी दृष्टि हटाई ही नहीं। ''हम भोजन बनाने अथवा भोजन करने बैठेंगे और यदि इतने में ही गुरुदेव का आगमन हो गया तो हम उनके दर्शन से वंचित रह जावेंगे'' इन विचारों से श्रावक–श्राविकाओं ने तो भोजन का त्याग ही कर दिया। संघस्थ मुनिराजों को तो आहार के लिए गांव की ओर जाने का विकल्प ही नहीं उठा। आठवें दिन का भी सूर्यास्त हो गया। मात्र निराशा ही हाथ लगी। निराशा के

साम्राज्य में आशा की किरण के सहारे रात भर जागृत रहते हुए रात्रि व्यतीत की।

एक सप्ताह की प्रतीक्षा के बाद आज आचार्य देव पधारेंगे ही इस आशा से हजारों-श्रावक जन आस-पास के गांवों से एकत्रित हो गये। और वे पर्वत पर ही रुके रहे; घर लौटे ही नहीं।

आकाश में कभी कदाचित उल्कापात होता अथवा खद्योत-जुगनू चमकते तो सभी चौंककर उस ओर ही देखने लगते। तीव्र उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा के बावजूद भी आचार्यश्री का शुभागमन हुआ ही नहीं। रात बीतती ही जा रही थी। प्रभात-कालीन प्रकाश मंद-मंद गति से आना चाहता था। स्वर्ण किरीट धारण किए हुए ऊषा काल का आगमन हुआ। पक्षी समूह ने सुप्रभात का गान किया। तरु-लताओं में नवीन चैतन्य का संचार हुआ। सूर्य के शुभागमन का समय समीप था। उस समय आकाश में दूर कहीं समुद्भूत कोई आनंदकारी, मंद, मधुर ध्वनि तरंग को अधीरता से सुना और तत्काल ध्वनितरंग की दिशा में अपनी दृष्टि लगायी।

ज्योर्तिलोक से मानो नक्षत्र मण्डल ही उतर कर आ रहा हो - ऐसा प्रकाशपुंज भूमि पर उतर आया। सबकी आँखें आश्चर्य कारक दृष्टि से उस ज्योर्तिपुंज को ही देख रही थीं। समीप आते-आते वह ज्योर्तिपुंज मनुष्याकार दिखने लगा। उसे देखकर हर्षोल्हासपूर्वक जनसमूह ने "आचार्य भगवान की जय ! कुन्दकुन्द भगवान की जय !" ऐसा उद्घोष किया। लोग बार-बार जयघोष करने में अत्यंत आनंद का अनुभव कर रहे थे। सभी आनंद विभोर हो गये थे। इस उद्घोष ध्वनि के पश्चिम पर्वत श्रेणी पर टकराकर प्रतिध्वनिरूप से वापस आने के पूर्व ही आचार्यदेव आकाश से उतर कर पौन्नूर पर्वत

पर आ गये। उसी समय उदयाचल पर बालभास्कर उदित हुए। इस ज्ञानभास्कर की धवल किरणों का प्रतिस्पर्धी बनकर तुझे इन रक्त किरणों का उगलना शोभा नहीं देता–ऐसा जानकर उस निर्मल नील गगन में छिपे हुए काले मेघखण्ड ने तत्काल बालभास्कर को आवृत्त कर दिया।

आचार्य भगवान उस दिन विदेहक्षेत्र से भरतक्षेत्र लौटे थे। अतः इस मधुर स्मृति प्रीत्यर्थ उस दिन सभी ने सर्वत्र महोत्सव मनाया। हुंडा–अवसर्पिणी के निकृष्ट इस पंचमकाल में जन्म लेकर भी तीर्थंकर भगवान का साक्षात् सानिध्य प्राप्त कर दर्शन कर दिव्यध्वनि का लाभ लिया। इस कारण चतुर्विध संघ ने आचार्यदेव को ''कलिकालसर्वज्ञ'' उपाधि से विभूषित करके अपने को गौरवान्वित माना।

**पौन्नूर पर्वत –**

आचार्यदेव जिस पर्वत से विदेहक्षेत्र गये थे और वहाँ से लौटकर जिस पर्वत पर आये थे, तपस्या की थी, शास्त्र–रचना की थी वह

पौन्नूर पर्वत वर्तमान समय में तमिलनाड प्रान्त में है। यह पर्वत मद्रास से 130 किलोमीटर दूरी पर वन्देवास गांव से केवल 8 किलोमीटर अंतर पर है। पर्वत के पास ही पोन्नूर पर्वत की सीढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं। बस अड्डे से 50 फीट की दूरी पर ही पोन्नूर पर्वत की सीढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं। नीचे जमीन से पर्वत पर पहुँचने के लिए कुल 325 सीढ़ियाँ हैं।

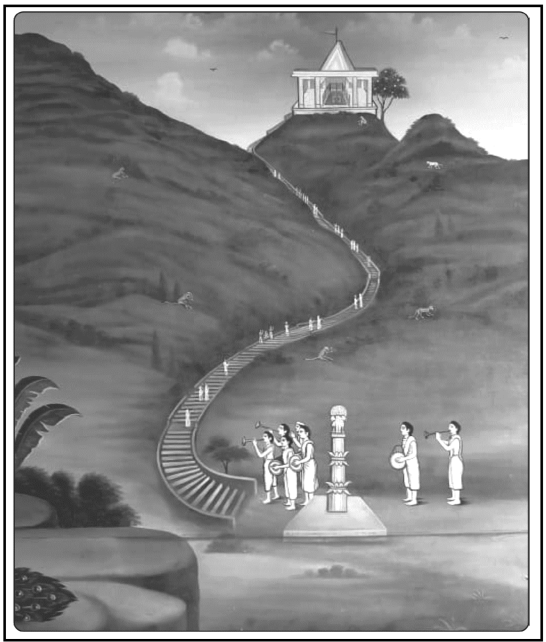

पर्वत पर आचार्य कुन्दकुन्द के अतिदीर्घ चरणपादुका एवं जिनप्रतिमा विराजमान है। और दक्षिण दिशा में 100फिट दूरी पर दो प्राकृतिक गुफाएँ हैं।

**पौन्नूर पर्वत से विहार –**

विदेह क्षेत्र से वापस आने के पश्चात् कुछ दिवस पौन्नूर पर्वत पर साधना करते समय, जैसे पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है, वैसे ही कुछ पात्र जीव आचार्यदेव का पावन सानिध्य पाकर संसार से विरक्त होकर वीतरागी पथपर अग्रसर हो रहे थे।

कुछ ही दिवस बाद अपार जनसमूह एकत्रित था, लेकिन गंभीर शांति भी थी। सब भक्तों की आँखों में एक अचार्यदेव ही समाये हुए थे। अल्पावधि में अनपेक्षित अपार जनसमूह को इकट्ठे हुए देखकर

सभी को आश्चर्य हुआ। आचार्य के विहार का अनुमान लगाकर सभी के मुख पर सहज विस्मय व निराशा का भाव झलक रहा था।

स्वेच्छाविहारी, स्वतंत्रवृत्तिवाले, दिगम्बर साधु को कोई क्या कह सकता है? कदाचिद् कोई धैर्य से साधु से कुछ कहे तो उनके मन में किसी की बात सुनने योग्य राग ही नहीं होता, तो वे सुने भी कैसे?

धन्य ! धन्य ! मुनिदशा ! जो होना था वह हो रहा था। उसे मौन रीति से जान लेना ही गृहस्थों का कर्तव्य था। आचार्यश्री बाह्यतः जनसमूह के बीच में थे, तो भी वे अन्तर्मुहूर्त में अलौकिक आत्मानंद के लिए अन्तस्तल में जाते थे। फिर बाहर आना होता था। साधु महापुरुषों का जीवन स्वभावतः ऐसा ही होता है।

सूर्य अपनी प्रखर किरणों को सौम्य करते हुए पश्चिम दिशा की ओर तीव्र गति से गमन कर रहा था। उस समय आत्मसमाधि से बाहर आकर आचार्य महाराज ने इकट्ठे हुए जनसमूह को देखा और वे खड़े हो गए। तत्काल ही जनसमूह ने आचार्यश्री का जय जयकार किया। वातावरण जयध्वनि से मुखरित हुआ। आचार्य श्री के चरण भी सूर्य का अनुसरण करते हुए पश्चिम दिशा की ओर बढ़ने लगे।

विहार प्रारम्भ हुआ। आचार्यश्री का अनुसरण करता हुआ द्रमिल संघ भी पूर्व घाटी से पश्चिम घाटी की ओर आगे–आगे बढ़ा। दिगम्बर दीक्षा धारण किए हुए शिवस्कन्धवर्मा आदि मुनि भी छाया की तरह आचार्यश्री का अनुसरण कर रहे थे। श्रमण महासंघ तमिलनाड से तुलुनाड की तरफ विहार कर रहा था।

''अरे ! हमारे मलय देश से धर्म ही निकला जा रहा है। भाग्य भी हमें छोड़कर भाग रहा है। यदि हमारे देश में/जीवन में धर्म ही

नहीं रहेगा तो अन्य वस्तुओं को लेकर हमें क्या करना है? इतने काल तक आचार्य देव के पवित्र सम्पर्क में रहकर हमने क्या साध्य किया? क्या समझा? कुछ भी नहीं? इसप्रकार की आत्मवंचना से हानि किसकी होगी? इससे दुःख भोगने का दुर्धर प्रसंग किसके ऊपर गुजरेगा?'' इसप्रकार अनेक प्रज्ञाचक्षु लोग गंभीरता से सोचते थे।

संसार की असारता को जानकर कुछ आसन्नभव्य जीव छाया की तरह आचार्य के अनुगामी हो रहे थे। अपना मानव जीवन सार्थक बना रहे थे। कुछ लोग वापस घर आये। कुछ लोग निर्णय करने में असमर्थ होने के कारण मार्ग के मध्य में स्थित होकर विचार कर रहे थे। आगे जानेवाले का जीवन उज्जवल बन गया, वे आत्मोन्नति के पथ पर आगे बढ़ गए। वापस आनेवाले घर पहुँच गये। परन्तु अभी भी विचार करने वाले कुछ लोग मध्य में ही खड़े थे।

आचार्यदेव का संघ ग्राम, नगर, मडम्ब, पत्तन, द्रोणामुख इत्यादि स्थानों में भव्यजीवों को सम्बोधित करता हुआ पर्वतप्रदेशों में तथा वन–जंगलों में ठहरता हुआ पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा था। जहाँ भी संघ जाता था वहाँ अपार जनसमूह एकत्रित होता जा रहा था। साधु–संतों के दुर्लभ दर्शन का संतोष उनके मन में समा ही नहीं पाता था। अतः वह भक्ति और श्रावकाचार के रूप में समाज में फैलता जा रहा था। दर्शनार्थी साधु समागम से अपना जीवन धन्य हुआ – ऐसा अनुभव करते थे।

आचार्यदेव का कहीं–कहीं महान उपकारी सारगर्भित मार्मिक उपदेश भी होता था। अनेक आसन्नभव्य जीव वास्तविक वस्तुस्वरूप को जानकर वैराग्य परिणाम दृढ़ होने से संघ में समाविष्ट होते थे। जितनी मात्रा में श्रावकसमूह शिष्ट संस्कारित होता जा रहा था उतनी

ही मात्रा में मुनिसंघ विशाल होता जा रहा था। इस तरह संघ स्वयमेव बढ़ रहा था। संघ बड़ा बनाने का विकल्प किसी को था ही नहीं, मात्र अपनी वीतरागता बढ़ाने का प्रयास ही अहो–रात्रि चलता था। इस तरह अनेक जगह वन–जंगलों में अनेक चातुर्मास करते–करते अर्थात् सतत धर्मामृत की वर्षा करते–करते सात्विक–अलौकिक आनंद समाज को देते हुए संघ का कल्याणकारक विहार हो रहा था।

साधु–संघ ने पश्चिमी घाट के हिंसक पशुओं के वास स्थानभूत अनेक वन–प्रदेशों में निर्भयता से निवास करते हुए आगुम्बे घाट के मार्ग से अत्युन्नत पर्वत पर आरोहण किया। वहाँ एक दिन संघ ने विश्राम किया। वहाँ से घाट उतर कर ''तीर्थहल्ली'' नामक गांव में आहार के लिए संघ आया। आहार के पश्चात तत्काल ही मुनिसंघ वन–जंगल की ओर चला गया।

दूसरे दिन गुड्डेकेरी के पास वाले रास्ते से संघ आगे जाने के लिए सोच ही रहा था कि इतने में आचार्यदेव पर्वत–श्रेणी के अनेक छोटे–बड़े पत्थर और कंकड़ों से सहित तथा काँटों से व्याप्त मार्ग से चलने लगे। पर्वत समान चट्टानों और गहरे–भयानक गर्तों की चिन्ता न करते हुए आगे बढ़ रहे थे। इस निविड़, भीषण वन में पैदल रास्ता भी कहाँ से होता? वहाँ से कौन गुजरता होगा कि जिसके चलने से वहाँ पैदल रास्ता बनता?

इसप्रकार पीछे मुड़े बिना और उस कुंदाद्रि की ऊँचाई की गिनती न करते हुए पर्वत पर गये। अहो ! आश्चर्यकारक दृश्य ! वह पर्वत इन महामुनीश्वरों के पाद स्पर्श से मानो पर्वत 'कुन्दन' हो गया। पर्वत पर सुवर्ण वेष्ठित माणिक्य रत्न की तरह जिनालय में शोभायमान भगवान पार्श्वनाथ की वीतरागी मनोहर मूर्ति को देखा। आचार्यश्री

ने भक्तिभाव से भगवान के चरणों की वन्दना की। वहीं तपस्या के लिए खड़े हो गए, साधना/सिद्धि में मग्न हो गए।

आचार्यदेव के पीछे-पीछे ही साधु समूह और अपरिमित श्रावक समुदाय पर्वत पर चढ़कर उस दिव्य मनोहर दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित हुआ, उस पर्वत- शिखर पर सदा जला-पूरति, धर्मतीर्थ सदृश धवल वर्ण से शोभायमान विशाल सरोवर को देखा।

उसीप्रकार श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर की मनोज्ञता, श्रेष्ठ वास्तुकला से अलंकृत मानस्तम्भ और मानवलोक को भुलाकर आत्मस्वरूप की निराकारता को बताने वाला नीला आकाश भी बहुत ही मनोहर है। इसप्रकार निसर्ग सौन्दर्य की गोद में नैसर्गिक निर्मल निज आत्मा का बोध करना सुलभ है। आचार्यदेव अब अस्सी वर्ष के हो गये थे। जैसे-जैसे वर्ष बीत रहे थे, वैसे-वैसे तपानुष्ठान के फलस्वरूप स्थिरता और प्रज्ञा में प्रखरता बढ़ती जा रही थी। अब साधना की सिद्धि अन्तिम अवस्था पर पहुँच गई थी। वे सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि के रहस्य को अपने अनुभव प्रत्यक्ष से साक्षात् करते हुए आनंदमय जीवन के साथ काल यापन करते थे।

स्वात्मानुभव के रसास्वादन के अलौकिक आनन्द और उसकी अद्भुत महिमा शिष्य समुदाय को प्रेरणा हेतु बताते थे। ऐसे अपूर्व विषय को सुनकर मुनिगण गुरुवर से ऐसे अलब्धपूर्व विषय को गाथा-

निबद्ध करने का अनुरोध करते थे। लोकोद्धार का करुणाभाव बलवान होने पर आचार्य गाथा भी लिख देते थे। इसप्रकार स्वाभाविक रीति से एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण और आध्यात्मिक ग्रन्थ रचना का कार्य चल रहा था। यदा-कदा दर्शनार्थ आनेवाला श्रावक समूह उन्हें लेखन-सामग्री जुटा जाया करता था। आस-पास विहार करने वाला मुनिसंघ भी एक अथवा दो माह में एकबार आचार्य महाराज के दर्शन का लाभ पाकर लौट जाया करता था।

जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे थे वैसे-वैसे आचार्य पुंगव गंभीर, गंभीरतर और गंभीरतम होते जा रहे थे। जनसम्पर्क से अति अलिप्त होकर अंतरंग की गहराई में ही प्रवेश कर रहे थे। जब वे अतीन्द्रिय आनंद सरोवर में डूब जाते थे उस समय शिष्यवर्ग लेखनसामग्री और ताड़पत्र प्रतिदिन रख जाते थे। एक-दो प्रहर के बाद आकर देखने पर आचार्यदेव आत्मध्यान में लीन दिखते थे तब उन लिखित ताड़पत्रों को वहाँ से उठाकर नये ताड़पत्र वहाँ रख जाते थे।

समाधि भंग होने से आचार्य ने पश्चिम दिशा की ओर दृष्टिपात किया तो दिनकर विश्रांति के लिए पश्चिम दिशा की ओर जाने की तैयारी में था। अतः आचार्य उठकर अपनी गुफा की ओर चले गये।

आचार्यदेव कभी पूर्वरचित गाथाओं के भाव का चिन्तन करते तो कभी लिखी जानेवाली गाथाओं का चिन्तन करते। ग्रंथ पूर्ण किए बिना अंतरंग में तृप्ति नहीं हो रही थी। विचित्र सृष्टि! विचित्र ऋषिदृष्टि!

देखो परिणामों की विचित्रता ! किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु के संबंध में अनुरक्त न होनेवाले अर्थात् सबसे सर्वथा विरक्त रहनेवाले आचार्यश्री की मनःप्रवृत्ति में इतना और ऐसा अपूर्व परिवर्तन कैसे हुआ? ध्यान और विचारों की तरंगों पर मानों तैरते-तैरते ही रात्रि

समाप्त हो गयी। सूर्योदय होते ही पुनः उन्होंने गाथा लिपिबद्ध करने का कार्य प्रारंभ किया। शिष्यों को परम आश्चर्य हुआ। सदा सर्वत्र सहज निर्लिप्त रहनेवाले गुरुदेव को ग्रंथरचना में सदैव अनुरक्त देखकर आश्चर्य न हो तो और क्या होगा?

इस अपूर्व और अलौकिक ग्रंथ की रचना पूर्ण होने से अब आचार्यश्री का जीवन पूर्ववत् सामान्य बन गया। इस ग्रन्थ की समाप्ति के पहले वे क्या करते थे, कहाँ रहते थे - इन सब बातों की उन्हें परवाह नहीं थी। आत्मलीनता से बाहर आने पर केवल ग्रंथ रचना के कार्य में ही सतत संलग्न रहते थे।

आचार्यदेव के आत्मा की अद्भुत अपार अचिंत्य शक्ति से अर्थात् उनके पुण्य और वीतरागमय पवित्रता से यह कार्य हुआ है, अन्यथा यह असम्भव था। यह ग्रन्थ रचने का कार्य होनेवाला था इसलिए सब संयोग-निमित्त जुट गये। वास्तविक देखा जाय तो प्रत्येक कार्य और बाह्य संयोग का ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक संबंध रहता है। अन्यथा ये भावलिंगी मुनिराज ग्रंथ रचना में इतने व्यस्त कैसे रहते?

यह ग्रंथकृति अर्थात् विश्व का एकवेम अद्वितीय चक्षु, संसारी जीवों को सिद्ध बनानेवाला भरतक्षेत्र का शब्दब्रह्म, सर्वजन कल्याणकारक 'समयसार' है।

ग्रंथ के आखिर में साक्षात् अनुभव द्वारा स्वयं गाथा में लिखा है- "जो आत्मा (भव्यजीव) इस समयप्राभृत को पढ़कर, अर्थ और तत्त्व से जानकर, उसके अर्थ में स्थित होगा, वह उत्तम सौख्यस्वरूप होगा।"

समयसार सदृश लोकोत्तर महिमायुक्त, महान, श्रेष्ठ अर्थात् लोकोत्तम कृति निर्माण करने पर भी आचार्य का हाथ श्रान्त नहीं हुआ।

तत्काल ही निश्चय चारित्र की प्रधानता से मोक्षमार्ग का स्पष्ट और सत्यार्थ निरूपक नियमसार की रचना में लग गये।

प्रमत्त और अप्रमत्त अवस्थास्वरूप झूले में निरन्तर झूलनेवाले आचार्यदेव ने त्रिकाली ध्रुव द्रव्य से पर्याय की एकता की साधना करते हुए परमपारिणामिक भाव के यथार्थ आश्रय से समुत्पन्न स्वसंवेदन सुख को संक्षेप में इस ग्रंथ में लिपिबद्ध किया है। कारणशुद्ध पर्याय, कारण समयसार, कार्य समयसार, सहज दर्शन, सहज ज्ञान आदि सूक्ष्म और अनुभवगम्य विषयों का खुलासा किया है।

अपनी आत्मसन्मुख वृत्ति को भी अत्यन्त मार्मिक शब्दों में स्पष्ट करते हुए अंतिम मंगल किया है– ''पूर्वापर दोष रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने निजभावना निमित्त नियमसार नाम का शास्त्र किया है।''

आचार्य कुन्दकुन्ददेव अपने सम्यक् तपानुष्ठान के सामर्थ्य से अनुपम–अलौकिक विदेहक्षेत्र में गये। वहाँ तीर्थंकर सीमन्धर भगवान के समवशरण में आठ दिन रहे। भगवान की दिव्यध्वनि साक्षात् श्रवणकर मन तो सन्तुष्ट हुआ ही था और आत्मा भी आनंदित हो उठी। आचार्यदेव सदा ज्ञान, ध्यान एवं तपोनुष्ठानों में तो निरत रहते ही थे, भगवान के साक्षात् सानिध्य से उनकी आत्मानुभूति भी प्रगाढ़ता को प्राप्त हुई। सोने में सुहागा यह लोकोक्ति चरितार्थ हो गयी।

आचार्यदेव मुख्यतः शुद्धात्मानुभव रूप निर्मल जल प्रवाह में निमग्न रहते थे; तथापि जब आत्मध्यान से बाहर आते थे तब संसारी जीवों की आत्मरसशून्य महापाप स्वरूप मिथ्यात्व परिणति को जानते थे। मिथ्यात्वपरिणतिरूप दुःख दावानल में दग्ध दुःखी जीवों को देखकर उनका चित्त क्षणभर के लिए करुणामय हो जाता था।

उन दुःखी जीवों को सुख का सच्चा उपाय बताना ही चाहिए,

ऐसी तीव्र दयार्द्र भावना उत्पन्न होती थी। इसलिए स्वपर भेदविज्ञान जन्य आत्मानुभव के सामर्थ्य से आत्मतत्त्व का रहस्य धर्मलोभी–याचक जीवों को उपदेश देकर अमृतमयी वचनों से समझाते थे।

करुणा विशेष होने से आचार्यदेव केवल शाब्दिक उपदेश देकर संतुष्ट नहीं हुए। अत: शुद्धात्मस्वरूप का यथार्थ बोध देने में समर्थ महान शास्त्ररचना करने की हार्दिक और करुणामय तीव्र अभिलाषा के फलस्वरूप जब शुद्धोपयोग से शुभोपयोग में आते थे तब कुछ तात्त्विक विचारों को गाथाबद्ध करते थे। जो आज भव्यजीवों को ग्रंथों के रूप में उपलब्ध है।

आचार्यदेव ने अपने जीवन काल में 84 पाहुड़ ग्रन्थों की रचना की थी ऐसा ज्ञातव्य है; लेकिन अब केवल समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्किाय, दर्शनपाहुड, सूत्रपाहुड, चारित्रपाहुड, बोधपाहुड, भावपाहुड, मोक्षपाहुड, लिंगपाहुड और शीलपाहुड ये बारह पाहुड़ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं, शेष पाहुड़ ग्रन्थ पृथ्वी के कठोर गर्भ में लुप्त हो गये हैं। अथवा किसी ग्रन्थ भण्डार में ताड़पत्र पर लिखे हुए उद्‌घाटन हेतु भवितव्य की राह में विराजमान होंगे ? बारसाणुवेक्खा, दशभक्ति नामक रचनाएँ भी आचार्यकृत ही हैं, जिनका रसास्वादन रसिक समाज कर ही रहा है।

सही देखा जाय तो आचार्य देव द्वारा रचित सर्व ही शास्त्र परमोपकारी हैं। उनके 84 पाहुड़ ग्रन्थ 84 लाख योनि से मुक्त होकर शाश्वत और सुखमय सिद्धालय में अनंतकाल पर्यंत विराजमान होने

के लिए प्रत्येक जीव को भेंटस्वरूप हैं, ऐसा अभिप्राय किसी को भी अतिशयोक्ति वा असत्य नहीं लगना चाहिए। इस तरह निर्णय करके सच्चे सुख की इच्छा रखनेवालों को आचार्य रचित, वर्तमान में उपलब्ध बारह समयपाहुड़ादि ग्रन्थों का आत्मसन्मुख होकर अध्ययन करना परमावश्यक है, मानवजीवन का आद्य एवं अनिवार्य कर्तव्य भी यही है।

**समाधि–स्थल (कुन्दाद्रि क्षेत्र) –**

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्यदेव ने इस संध्याचल की पर्वत श्रृंखलाओं के उत्तंग शिखर पर आकर दीर्घकाल तक तपस्या की थी। अत: उनकी महिमा से ही अर्थात् आचार्यदेव के नाम के कारण ही इस उत्तंग शिखर को 'कुन्दाद्रि' नाम से लोग भक्ति और आनंद पूर्वक पुकारने लगे। यह स्थान आचार्यदेव की तपोभूमि बन जाने से लोग इस स्थान को पवित्र मानने लगे। अत: यह पर्वत स्वाभाविक रूप से तीर्थक्षेत्र घोषित हो गया।

इस पर्वत पर बारहवीं शताब्दी में तैलप राजा ने पार्श्व जिनालय का निर्माण कराया था। राजवैभव के साथ जिनबिम्ब की भक्ति और उत्साह से पंच कल्याणक प्रतिष्ठा भी कराई थी। आज इसका

शिलालेख अस्पष्ट होने के कारण पढ़ने की स्थिति में नहीं है। इसलिए सम्पूर्ण विषय की जानकारी पूरी तरह समझ में नहीं आती।

जब आचार्य भगवान इस क्षेत्र पर आये, तब उन्हें 80 वर्ष पूर्ण हुए थे। आज आचार्यदेव की देह के 90 वर्ष के हो चुके हैं। ज्ञान–अनुभूतियाँ जैसे–जैसे वृद्धिंगत हो रहीं थीं, वैसे–वैसे अन्तरंग में आत्मा निर्मल होते जा रहा था। आत्मनिर्मलता का तेज उस 90 वर्ष के दुबले–पतले शरीर से स्पष्ट झलक रहा था।

कभी–कभी आहार का विकल्प होने पर नगर में आते थे। श्रावक के घर नीरस, प्रासुक, अल्पाहार स्वीकार करके लौटते थे। वे जमीन का स्पर्श न करके आकाश में गमन करने की चारणऋद्धि के कारण तीर्थंकर तुल्य लगते थे और अन्तरंग स्निग्ध परिणाम से रहित निर्मल उपयोग को धारण करते थे अर्थात् अन्तरंग तथा बाह्य में रज से अत्यन्त अस्पृष्ट रहते थे।

जैसे–जैसे आयु बढ़ती जा रही थी, शरीर की शक्ति कम होती जा रही थी; वैसे–वैसे आचार्यदेव की आत्मिक शक्ति बढ़ती जा रही थी। उससे वे और गहराई में जा रहे थे, बाह्य जगत को भूलते जा रहे थे, आहार का विकल्प भी कम होता जा रहा था। ऐसा होने से स्वाभाविक रूप से ही अन्तरंग में भाव की निर्मलता बढ़ती जा रही थी।

अब कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 95 वर्ष पूर्ण करके 96 वर्ष में पदार्पण किया है। जैसे–जैसे वृद्धत्व वृद्धिंगत हो रहा था, वैसे–वैसे शरीर और शरीर से सम्बन्धित इन्द्रियाँ दुर्बल होकर वे अपने वियोग की सूचना दे रही थीं।

उससे जागृत हुए आचार्य की आत्मलीनता बढ़ती जाती थी।

अब वे शरीर में रहते हुए भी अपने को शरीर से भिन्न अनुभव करते हुए शरीर छूट जाने तक प्रत्येक क्षण आत्मा के कार्य के लिए ही जाग्रत थे अर्थात् सत्ता में बचे हुए कर्मकलंक को कम करने के लिए उपयोग करते रहते थे।

सप्ताह मात्र में दो बार ही आहार के लिए गये और केवल प्रासुक जल स्वीकार करके आ गये। इस बीच ऐसे ही एक सप्ताह बीत गया। तत्पश्चात् और एक बार आहार के लिए जाकर केवल किंचित् जल स्वीकार करके वापिस आकर दूसरे शिखर पर पद्मासन में बैठ गए।

पद्मासन में बैठे हुए छह दिन बीत चुके हैं और सातवे दिन, अखण्ड पर्वत–चट्टान में गढ़ी हुई प्रतिमा की तरह ही स्थिर बैठ गये, 'एक अंजुलीभर पानी स्वीकार किये हुए उन्हें आज सत्रह दिन हो गये।'

आचार्यदेव को जल ग्रहण किये हुए बीस दिन बीतने पर भी और पद्मासन में बैठे हुए दस दिन बीतने पर भी तथा एक क्षण के लिए भी आँखें खोले बिना, आसन बदले बिना, पत्थर की प्रतिमा की तरह, अचल–स्थिर मूर्तिवत् बैठे रहना यह एक जगत के लिए विस्मयकारक घटना ही है।

आज शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी, सूर्योदय के अन्तर्मुहूर्त पहले सुधाकर को अस्त हो जाना चाहिए, पर न जाने क्यों? वह अपना सिंहासन छोड़ने के लिए देर कर रहा है। पश्चिम दिशांत में पलक झपके बिना देखता हुआ खड़ा है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव के सम्पूर्ण शरीर प्रदेश में फैला हुआ चैतन्यांश–रत्नत्रयरूपी भगवान आत्मा अपने प्रदेशों को संकुचित कर शरीर में

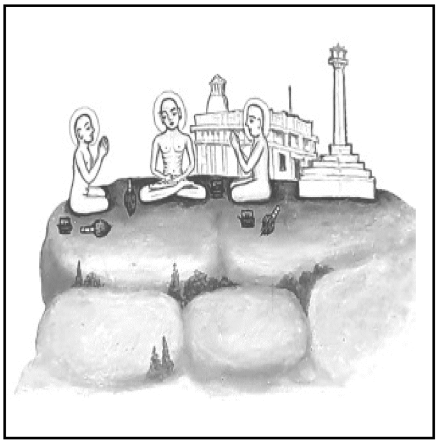

किसी प्रकार की हलचल न मचाते हुए मस्तिष्क से ऊपर उठकर ऊर्ध्वमुख होकर चला जाता है। तुरन्त ही मस्तक कंधे पर गिरकर लुढ़क जाता है, तात्पर्य आचार्य देव का आत्मा इस शरीर का परित्याग कर स्वर्गारोहण कर गया। सुधाकर से देखा नहीं गया, अतः वह पश्चिम दिशान्त में उतर जाता है। तभी भास्कर के आने की सूचना देती हुई ऊषादेवी अपने मस्तक पर सोने का मुकुट पहन कर उदयाचल से निकल आती है।

आचार्यदेव को 96 वर्ष पूर्ण होने में पैंतालीस दिन कम रह गये – ऐसी एक आवाज़ वहाँ सुनाई दी। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस कुंदाद्रि के रूप में सदा–सदा के लिए अमर हो गये।

इस महामानव ने 95 वर्ष, 10 मास, 15 दिवस पर्यन्त दीर्घ मनुष्य–जीवन सफल रीति से व्यतीत कर, ई. सं. पूर्व 12 में समाधिमरण[1] पूर्वक स्वर्गारोहण किया।

इसप्रकार आत्मकल्याण के साथ–साथ परकल्याण की स्वभाविक भावना से आचार्यदेव ने सभी तीर्थंकर परमदेवों की दिव्यध्वनि के सार को और स्वानुभूत सत्य को लोकमंगलकर ग्रन्थरत्नों में निबद्ध करके जगत के भव्यजीवों पर महान उपकार किया।

1. निरन्तर आत्मसाधना रत साधुओं की समाधि कैसी होती है – यह बताने के लिए शास्त्रों के आधार से आचार्य कुंदकुंद देव की समाधि का वर्णन लेखक ने बहुत ही सुन्दर व सटीक किया है। –सम्पादक

यहाँ निरूपित आचार्य देव के जीवन चरित्र से उनके महान जीवन का सामान्य परिचय हो; इस उद्देश्य से इस कृति की रचना हुई है। आचार्य ने अपने जीवन में जिस सत्य का साक्षात्कार किया था उसके लिए उनकी कृतियों के अध्ययन की अभिलाषा यदि मन में उत्पन्न होती है तो यह रचना सफल है। आचार्यदेव के समान हम सभी पवित्र होंगे, तो ही समझना चाहिए कि हमने आचार्य देव को वस्तुतः समझा है। ●

**( सवैया )**

कुन्दकुन्द स्वामी के दरश भये कल्पना में
मैंने कहा हे मुनीन्द्र ! जय हो सु-जय हो।
करुणा से बोले – वत्स ! धर्मवृद्धि होय तेरी
सातों ही भयों से हो रहित तू अभय हो।
तू है सिद्ध के समान पूर्ण शुद्ध बुद्ध ध्रुव
तत्त्व अभ्यास कर व्यर्थ न समय खो।
निज आत्मा को छोड़ और कहीं मत दौड़
निज में ही बस जा तो तेरी भी विजय हो।।1।।

कुन्दकुन्द स्वामी ने सभी से पूछी यही बात
तू है कौन आयो है कहाँ से कहाँ जायगो।
पुग्गल के परमाणुओं से बनी देह जड़
लायो नहीं संग नहीं संग ले जायगो।
सिद्ध सम हो के तू अनादि से भटक रह्यो
आयो है निगोद से ये ज्ञान कब पायगो।
निज-पर भेदज्ञान शुद्ध आत्मा पिछान
निज माहिं आयगो तो मोक्ष सुख पायगो।।3।।

**– कुन्दकुन्द महिमा : राजमल पवैया**

**परिशिष्ट –1**

## काल विषयक जानकारी

कुन्दकुन्दाचार्यदेव को ''कलिकाल सर्वज्ञ'' जैसे महान आदर सूचक शब्दों से शास्त्रों में स्मरण किया गया है। यह तथ्य इस विश्वास को और भी दृढ़ता प्रदान करता है कि भरतक्षेत्र में आचार्य के विचरण का जो काल विक्रम की पहली शताब्दी निर्धारित किया गया है, इससे भी उनका काल प्राचीन होना चाहिए। स्वयं आचार्य ने अपने बोधपाहुड़ ग्रंथ में अपने को सीसेण या भद्दबाहुस्स (भद्रबाहु का शिष्य) सम्बोधित किया है। इससे आचार्य का अस्तित्व काल ई.स. पूर्व होना चाहिए ऐसा स्पष्ट सिद्ध होता है।[1]

बोधपाहुड़ ग्रंथ की 62वीं गाथा में ''बारह अंग का ज्ञाता और चौदह पूर्व का विस्तार से प्रचार करनेवाले श्रुतकेवली भगवान भद्रबाहु (मेरे) गमकगुरु जयवन्त रहें।'' इस तरह आचार्य कुन्दकुन्द देव ने घोषणा की है।

अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु को छोड़कर यदि दूसरे ही मुनि, आचार्य कुन्दकुन्द देव के गुरू होते हैं तो वे अपने गुरू के रूप में उनका नामोल्लेख अवश्य करते, क्योंकि अपने वास्तविक गुरू को छोड़कर

---

1. मुझे लगता है कि आचार्य कुन्दकुन्द का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी से बहुत पूर्व का था, क्योंकि आचार्य द्वारा रचित किसी भी ग्रंथ में उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया है। पर बोधपाहुड़ की 61-62वीं गाथाओं को पढ़ने के बाद बोधपाहुड़ श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य की कृति है ऐसा ज्ञात होता है और बोधपाहुड़ यह ग्रंथ आचार्य कुन्दकुन्ददेव की कृति है, यह विषय निर्विवाद है। इससे स्पष्ट होता है कि वे श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य थे। इस स्थिति में आचार्य कुन्दकुन्द का समय विक्रम शताब्दी से बहुत पहले का है। – श्रीरामप्रसाद जैन : अष्टपाहुड़ भूमिका, पृष्ठ 78)

श्रुतकेवली भद्रबाहु को अपने गुरू के रूप में घोषित करना और स्वयं उनका शिष्य नहीं होने पर भी अपने आपको शिष्य के रूप में घोषित करना, पंचमहाव्रत के पालन करनेवाले आचार्य द्वारा कैसे संभव होगा? क्यों करेंगे?

आचार्य ने स्वयं समयसार ग्रंथ के मंगलाचरण में कहा है कि ''वोच्छामि समयपाहुड़मिणमो सुदकेवली भणिदं'' अर्थात् मैं (कुन्दकुन्द) श्रुतकेवली (भद्रबाहु स्वामी) द्वारा कहा हुआ समयपाहुड़ कहता हूँ।

आचार्यदेव ने सूत्रपाहुड़ ग्रंथ के गाथा क्रमांक 23 में कहा है–

''वस्त्र धारण करने वाले मुनि चाहे भले तीर्थंकर ही क्यों न हों तो भी वे मोक्षप्राप्त नहीं कर सकेंगे, क्योंकि नग्न–दिगम्बर भेष ही मोक्षमार्ग है।''

उसी प्रकार इसी सूत्रपाहुड़ ग्रंथ में गाथा क्रमांक 18 में कहा है–

''नग्न–दिगम्बर अवस्था अर्थात् यथाजात रूप अवस्था धारण करने वाले मुनि यदि तिलतुषमात्र भी परिग्रह ग्रहण करेंगे तो वे निगोद में जायेंगे।''

– इसप्रकार की गाथाओं की रचना का कारण धार्मिक क्षेत्र में उत्पन्न मतभेद और साधु समाज में बढ़ता हुआ शिथिलाचार ही होना चाहिए-ऐसा लगता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी ने ''उत्तर भारत में बारह वर्ष का अकाल रहेगा'' ऐसा निमित्तज्ञान से जाना था। अनादिकाल से अखण्ड चली आ रही पवित्र दिगम्बर साधु परम्परा के संरक्षण के लिए सनातन सत्य, वीतराग जैनधर्म की सुरक्षा के लिए अपने संघ के दिगम्बर साधु शिष्यों के साथ उन्होंने दक्षिण भारत में पदार्पण किया।

किन्तु कुछ दिगम्बर मुनि आचार्य भद्रबाहु के साथ दक्षिण में नहीं आये, उत्तर भारत में ही रहे। उत्तर भारत में भयानक अकाल के कारण दिगम्बर साधु अवस्था का निर्वाह होना कठिन हो गया। अतः साधु अचेल अवस्था का त्याग कर सचेलक बन गए – श्वेत वस्त्रों को अंगीकार करने लगे।

अकाल समाप्ति के बाद स्वीकृत वस्त्र व अन्य शिथिलाचार का त्याग नहीं किया। उल्टा शिथिलाचार को ही धर्म का स्वरूप प्राप्त हो – ऐसा प्रचार प्रारंभ किया। इसके लिए प्राचीन द्वादशांग के नाम पर कल्पित शास्त्रों की रचना की गई। मोक्षप्राप्ति का शिथिलाचार सहित सुलभ मार्ग सामान्यजनों को सुहावना लगने लगा; यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है।

सत्य, सनातन वीतराग जैनधर्म और परम पवित्र तथा निर्दोष साधु के आचार पर प्रबल आघात हो रहा था, यह आचार्य कुन्दकुन्द को कैसे स्वीकृत हो सकता था? यह विकृति दूर हो – ऐसी धर्मभावना दिन–प्रतिदिन आचार्य श्री के मन में बलवान होती जा रही थी। ऐसे समय में गुरु श्रुतकेवली भ्रदबाहु का स्वर्गवास हो गया। अतः आचार्य कुन्दकुन्द का उत्तरदायित्व और भी बढ़ गया। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित मूल सत्य वस्तुस्वरूप लोगों के गले में उतारना एवं उसे लिपिबद्ध करना और निर्ग्रन्थ साधु परम्परा को यथावस्थित सुरक्षित रखना एवं भविष्य के लिए बढ़ाते रहना इन बातों की अनिवार्य आवश्यकता आचार्य को तीव्रता से महसूस हुई। अतः जनजागृति और धर्मप्रचार के लिए सम्पूर्ण भारत में विहार किया।

मूल अचेल–निर्ग्रन्थ परम्परा को जनमानस में सर्वोपरि स्थान रहे– इस भावना से सत्शास्त्रों की रचना भी की। सचेल/श्वेताम्बर परम्परा का खुलेआम–स्पष्ट विरोध किया। समग्र अष्टपाहुड़ ग्रंथ एक दृष्टि से

आचार संहिता ही है। इस ग्रंथ का विषय ही मुनिराज का आचार-विचार, विहार, चिंतन एवं स्वरूप ही है। इसी कारण उस समय अष्टपाहुड़ ग्रंथ सचेल परम्परा के लिए समस्या बन गया था।

आचार्य कुन्दकुन्द देव की महिमा प्राचीनता और अर्वाचीनता पर सिद्ध होने लायक कृत्रिम–बनावटी और परोपजीवी नहीं है। उनकी महिमा उनके प्रतिपादित परम सत्य व सर्वथा निराबाध वस्तुस्वरूप तथा साक्षात् आनंददायक परम अध्यात्म पर अधिष्ठित है। आचार्य द्वारा प्ररूपित एवं उनसे स्वयं अनुभूत मार्ग का जीवन में जो कोई उपयोग करेगा वह तो स्वयं सुखी होगा ही और अन्य जनों के सुख–साधन के लिए निमित्त भी बनेगा यह वस्तुस्थिति है। इसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में करना आवश्यक है। यहाँ उधार एवं अंधश्रद्धा का कुछ काम नहीं है।

**– आचार्य कुंदकुंद देव पृष्ठ 83 से 87 से साभार**

**( सवैया )**

कहवे को चार गति किन्तु रहवे कूं नाहिं
रहवे की दोय गति पृथक् बतायी है।
एक उर्ध्व गति जाकूँ पंचम गति कहैं
एक अधो गति जो निगोद कहलायी है।
दो हजार सागर अवधि चारों गति की है
घूमने के वास्ते ये हम सब पायी है।
इसी बीच आत्मध्यान कियो ह्वै तो सिद्ध गति
नहीं तो निगोद गति कुन्दकुन्द गायी है।।4।।

**– कुन्दकुन्द महिमा : राजमल पवैया**

**परिशिष्ट – 2**

## विदेह गमनविषयक जानकारी

आचार्य कुन्दकुन्द के विदेह गमनविषयक अनेक ऐतिहासिक प्रमाण पृथ्वी के गर्भ में लुप्तप्राय हो गये हैं, जो कुछ प्रमाण, आगम और शिलालेख में अभी भी मौजूद हैं; उनका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

वि. सं दसवीं शताब्दी के देवसेनाचार्य ने दर्शनसार ग्रन्थ में लिखा है–

**''जई पउमणंदिणाहो सीमंधरसामदिव्वणाणेण।**
**ण विवोहई तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति।।**

**अर्थ –** यदि सीमंधर स्वामी (महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकर देव) से प्राप्त हुए दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनंदिनाथ (श्री कुन्दकुन्दाचार्य) ने बोध नहीं दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे प्राप्त करते?''

**बारहवीं शताव्दी के श्री जयसेनाचार्य पंचास्किाय के प्रारम्भ में ही मूलत: संस्कृत टीका में लिखते हैं, जिसका हिन्दी इसप्रकार है–**

'' श्रीकुमारनंदिसिद्धान्तदेव के शिष्य प्रसिद्ध कथान्याय से पूर्व विदेहक्षेत्र जाकर वीतराग सर्वज्ञ श्री सीमंधरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन कर उनके मुखकमल से निसृत दिव्यध्वनि के श्रवण से शुद्धात्मादि तत्त्वों के साथ पदार्थों को अवधारण कर समागत श्री पद्मनंदि आदि हैं अपर नाम जिनके उन श्री कुंदकुंदाचार्य देव के द्वारा...''

कुछ इसीप्रकार का भाव श्री श्रुतसागरसूरि ने भी अपनी षट्प्राभृत की संस्कृत टीका के अंत में लिखा है। सोमसेन पुराण में भी निम्नप्रकार उल्लेख मिलता है –

''कुन्दकुन्दमुनिं वन्दे चतुरंगुलचारिणम्।
कलिकाले कृतं येन वात्सल्यं सर्वजन्तुषु।।

अर्थ – कलिकाल (पंचमकाल) में जिन्होंने सर्व प्राणियों पर वात्सल्य किया और जो जमीन से चार अंगुल अधर गमन करते थे, ऐसे कुन्दकुन्द मुनि की मैं वंदना करता हूँ।''

**वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कोण्डकुन्दः**
**कुन्दप्रभाप्रणयकीर्ति विभूषिताशः।**
**यश्चारुचारणकराम्बुज चंचरीक**
**श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्।।**

– चन्द्रगिरि शिलालेख 54/67

**अर्थ** – कुन्दपुष्प की प्रभा धारण करनेवाली जिनकी कीर्ति के द्वारा दिशायें विभूषित हुई हैं, जो चारणों के – चारणऋद्धिधारी महामुनियों के सुन्दर कर–कमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्र आत्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुन्दकुन्द इस पृथ्वी पर किसके द्वारा वन्द्य नहीं हैं?

''...................... **कोण्डकुन्दो यतीन्द्रः।**
**रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्योऽपि संव्यजयितुं यतीशः।**
**रजः पदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगलं सः।।**

–श्रवणबेलगोल शिलालेख 105

**अर्थ** – यतीश्वर (आचार्य कुन्दकुन्ददेव) रजःस्थान – पृथ्वीतल को छोड़कर चार अंगुल ऊपर गमन करते थे, जिससे मैं समझता हूँ कि वे अन्तर और बाह्य रज से अत्यन्त अस्पृष्टता व्यक्त करते थे अर्थात् वे अंतरंग में रागादि मल से तथा बाह्य में धूल से अस्पृष्ट थे।''

**बीसवीं शताब्दी के आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी भी आचार्य कुन्दकुन्द देव के साहित्य का गहन अध्ययन करने के बाद अपने प्रवचनों (प्र.रत्नाकर भाग 1 पृष्ठ 81) तथा चर्चा में पुनः पुनः कहते थे –**

''भगवान श्री कुंदकुंदाचार्य......भरतक्षेत्र में हुए थे। वे सदेह महाविदेह क्षेत्र में भगवान सीमंधरस्वामी के समोशरण में गये थे। महाविदेह क्षेत्र में भगवान सीमंधरस्वामी अभी अरहंत पद में विराजमान हैं, उनकी 500 धनुष की काया और एक करोड पूर्व की आयु है। वहाँ कुंदकुंदाचार्य संवत् 49 में गये थे। वहाँ 8 दिन रहे थे। वहाँ भगवान की वाणी सुनकर भरतक्षेत्र में आये थे। यहाँ आकर शास्त्र बनाये। यह कपोल कल्पना नहीं, वस्तु स्थिति है।''

**( सवैया )**

नाना जीव नाना कर्म नाना लब्धियाँ विचार
किसी से भी भूल के विवाद मत कीजिए।
परिणति सबकी है अलग–अलग सदा
उन पै न ध्यान कभी भूल के न दीजिए।
एक मात्र अपनी ही परिणति लो सुधार
कुन्दकुन्द कहें अनुभव रस पीजिए।
पर समयों में न गवांओ निज समय को
स्व–समय शक्ति से ही सिद्धपद लीजिए।।6।।

**– कुन्दकुन्द महिमा : राजमल पवैया**

**बोलिए, आचार्य कुन्दकुन्द देव की जय हो !**

## ➤ हमारे प्रकाशन ➤

| | | |
|---|---|---|
| चौबीस तीर्थंकर पुराण | (हिन्दी) | 75/- |
| चौबीस तीर्थंकर पुराण | (गुजराती) | 50/- |
| शिवपुर के राही (मल्टीकलर) | (श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन) | 50/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1 | (लघु कहानियाँ) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2 | (सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3 | (ब्रह्मगुलाल, अंगारक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4 | (श्री हनुमान चरित्र) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5 | (श्री पद्म (राम) चरित्र) | 25/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6 | (अकलंक-निकलंक नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7 | (अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8 | (8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा) | 20/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9 | (शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10 | (सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11 | (सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12 | (बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13 | (यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14 | (नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश... ) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15 | (बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16 | (सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17 | (प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18 | (सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19 | (षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20 | (श्री वरांग चरित्र) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21 | (श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22 | (श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23 | (श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24 | (उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25 | (कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26 | (बाईस परीषह : संवाद के रूप में) | 30/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27 | (तू किरण नहीं सूर्य है) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28 | (लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29 | (भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा) | 20/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30 | (भगवान पार्श्वनाथ चरित्र) | 15/- |
| जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31 | (भगवान नेमिनाथ चरित्र) | 20/- |

# हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

**''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''**

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।